सचित्र जीवन साखियां

गुरु गोबिंद सिंघ जी



डा. अजीत सिंघ औलख

१ओं सतिगुरु प्रसादि॥

सचित्र जीवन साखियां

गुरु गोबिंद सिंघ जी



लेखक :

डा. अजीत सिंघ औलख

एम.ए.पी एच.डी.

प्रकाशक :

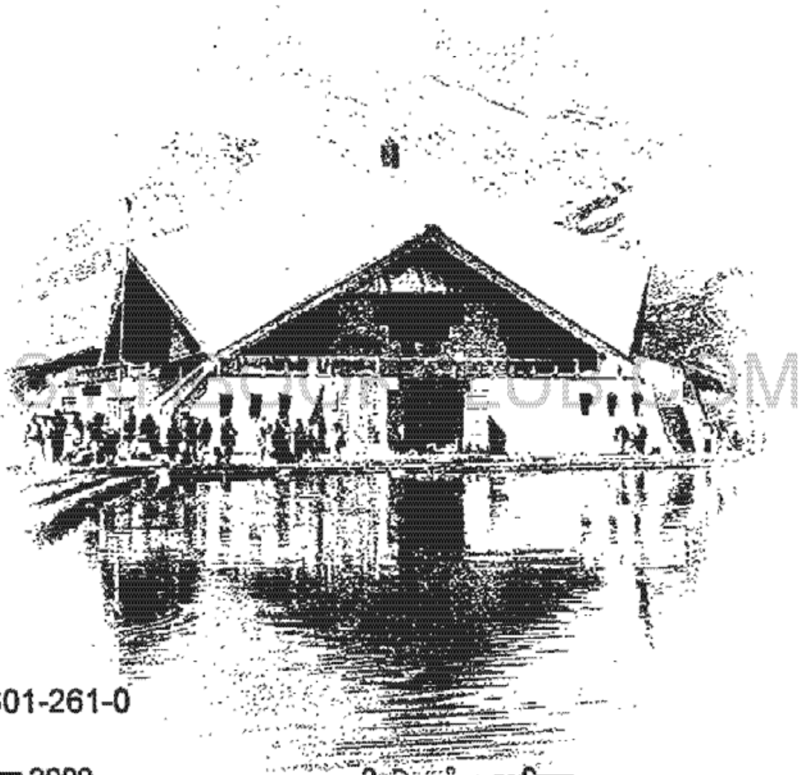
भा. चतर सिंघ जीवन सिंघ

बाज़ार माई सेवां अमृतसर (इंडिया)

सचित्र जीवन साखियां

गुरु गोबिंद सिंघ जी

Gurdwara Sri Hemkunt Sahib



ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਸ੍ਰੀ ਹੇਮਕੁੰਟ ਸਾਹਿਬ

ISBN : 81-7601-261-0

पांचवां संस्करण 2009

छठा संस्करण जनवरी 2015

भेटा : 150-00

प्रकाशकः

भा. चतर सिंघ जीवन सिंघ

बाज़ार माई सेवां, अमृतसर।

टैली/फैक्सः 0183-2542346, 2547974, 2557973

E-mail : csjssales@hotmail.com, csjsexports@vsnl.com

cjgroup77@yahoo.com

Visit our Website : www.csjs.com

मुद्रक:- जीवन प्रिंटर्ज, अमृतसर। फोन: 2705003, 5095774

हेम कुंट

सिक्ख पंथ के जन्म दाता हमारे दसवें गुरु गोबिंद सिंघ हैं। आप पहले अवतार हैं जिन्होंने अपने पूर्व जन्म के बारे में भी लिखा है। बचित्र नाटक में उन्होंने अपनी आत्म कथा कविता में लिखी है। अपने पिछले जन्म के बारे में वे लिखते हैं, कि हिमालय पर्वत की गोद में जहां पर बर्फ की सात चोटियां सुशोभित हैं, वहां पर उन्होंने बहुत समय तपस्या की। वहां वे प्रभु के चरणों में लीन होकर प्रभु से एक जोत एक स्वरूप हो गए थे। प्रभु मिलाप की आनन्दमयी स्थिति में वे इतने प्रसन्न थे कि उनकी सभी इच्छाएं पूर्ण हो गई थीं। जिस स्थान पर गुरु जी ने भक्ति की थी उस स्थान को हेम कुंट पर्वत कहते हैं। बचित्र नाटक के आन्तरिक वर्णन अनुसार सिक्खों ने उस स्थान का पता लगा लिया है, जहां बैठकर गुरु साहिब ने पिछले जन्म में तपस्या की थी। आजकल हेम कुंट में एक सुंदर गुरुद्वारा बनाया गया है। गुरुद्वारा साहिब के साथ ही एक सरोवर है जिसका जल अति शीतल और निर्मल है। हेम कुंट तक पहुंचने के लिए अब रास्ते में कई गुरुद्वारे और विश्राम गृह बन गई हैं और पक्की सड़क भी बना दी गई है। लाखों यात्री जुलाई अगस्त के महीने में हेम कुंट साहिब के दर्शन करने जाते हैं और पवित्र सरोवर में स्नान करके अपना जीवन सफल करते हैं।

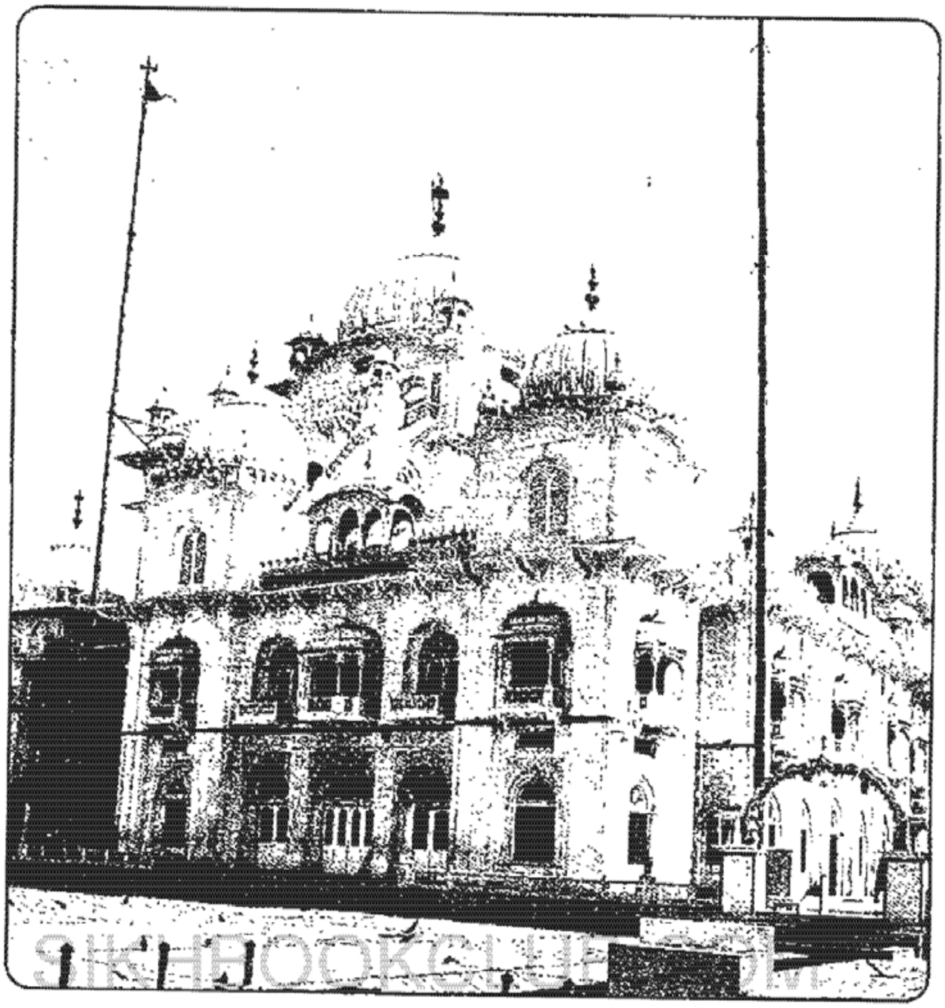
इस सरोवर तक पहुंचा हुआ मनुष्य बेशक कितना भी थका हो, एकडुबकी लगाते ही सारी थकावट दूर हो जाती है और मनुष्य को यूं महसूस होता है कि जैसे उसने ज़िन्दगी के सारे सफर की थकावट दूर कर ली हो।

हेम कुंट साहिब का वातावरण भी बहुत रमणीक है। इस स्थान का मानसून और फूलों की महक शरीर में एक अजीब प्रकार की ताज़गी पैदा करती है। पानी से बाहर होने वाला ब्रह्म कंवल भी यहां होता है। बहुत सारी सुगंधित बूटियों से धूप बनता है। इस धरती पर कुशा घास पैदा होता है। इस कुशा घास पर चलने का भी अजीब ही मज़ा है, ऐसे अनुभव होता है जैसे गलीचे पर चल रहे हों। यहां के वृक्षों और बूटियों की एक और विशेषता यह है कि इन पौधों के पत्ते सुखने पर पीले नहीं होते बल्कि गुरु कृपा से लाल हो जाते हैं।

पटना साहिब में अवतार लिया

पूर्व जन्म में गुरु साहिब हेम कुंट स्थान पर प्रभु के चरणों में लीन थे। उस समय भारत में ज़ुल्म की कोई सीमा न थी। हाकम लोग प्रजा पर बहुत ज़ुल्म कर रहे थे। प्रभु के नाम सिमरन की बजाए लोग एक दूसरे का खून बहा रहे थे। इस्लाम के बानी मुहम्मद साहिब ने मुसलमानों को यह आदेश दिया था कि वे अल्लाह की इबादत करें और एक दूसरे के साथ भाईयों जैसा व्यवहार करें। लेकिन मुसलमान हाकम इबादत करने की बजाए लूटमार और कत्लेआम कर रहे थे। कोई भी व्यक्ति सुरक्षित नहीं था। बादशाह औरंगज़ेब अल्लाह के नाम पर ज़बरदस्ती हिन्दुओं को मुसलमान बना रहा था अन्यथा कत्ल कर रहा था।





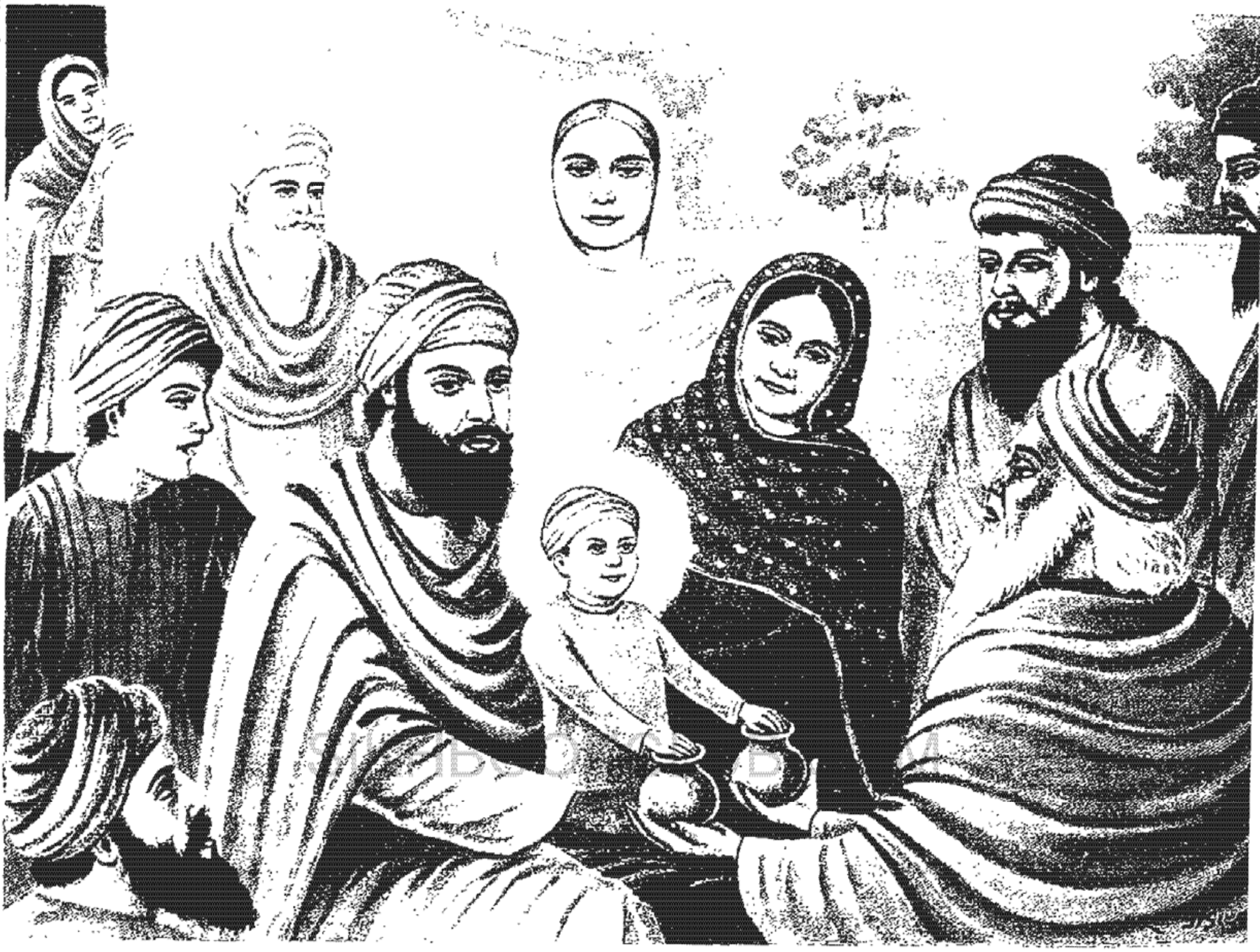
अकाल पुरुष से भी ऐसे कठोर ज़ुल्म सहन नहीं हो रहे थे। उन्होंने यह सोचा कि किसी ऐसे महापुरुष को संसार में भेजा जाए जो इस ज़ुल्म का नाश करे और लोगों का ध्यान प्रभु नाम का जाप करने की ओर दिलाए।

इस लिए अकाल पुरुष ने तपस्वी गुरु साहिब को यह आदेश किया कि वे भारत में जन्म लें। अकाल पुरुष के आदेशानुसार गुरु गोबिंद सिंघ जी ने २२ दिसंबर १६६६ ई. को बिहार प्रान्त की राजधानी पटना में अवतार लिया। आप जी के पिता नवमी पातिशाही श्री गुरु तेग़ बहादुर जी थे और आप की माता जी का नाम माता गुजरी था। गुरु तेग़ बहादुर जी उस समय आसाम की तरफ गए हुए थे। उनको आसाम में ही ख़बर भेजी गई। पटना शहर के लोगों को जब यह शुभ समाचार मिला तो सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए। गुरु साहिब जी की दादी माता नानकी जी ने गरीबों को खूब दान दिया। खुले लंगर लगाए गए और रात को दीपमाला की गई। गुरु साहिब के मामा कृपाल चंद भी वहां मौजूद थे। वे गुरु जी की पूरी सेवा संभाल करते थे और बार बार कहते थे कि हमारे घर आप गोबिंद ने अवतार लिया है। इस लिए बाला प्रीतम का नाम गोबिंद राए रखा गया।

भीखण शाह का दर्शनों के लिए आना

भीखण शाह एक पहुंचे हुए फ़कीर थे। उन्होंने प्रभु की इतनी भक्ति की थी कि स्वयं ही प्रभु का रूप बन गए थे। उनका जन्म सन् १६३७ ई. को गाँव सयाना जिला कैथल हरियाणा में हुआ। उनकी इबादत और पाक पवित्र जीवन से प्रभावित होकर इलाके के लोग उनका बहुत आदर मान करते थे। लाखों हिन्दु मुसलमान उनके अनुयायी थे। एक दिन जब वे अपनी इबादत में लीन थे तो उनको पूर्व की तरफ "ईश्वरीय नूर" दिखाई दिया। उन्होनें अपने ईश्वरीय ज्ञान के द्वारा समझ लिया कि पूर्व की तरफ किसी परमेश्वर स्वरुप ने अवतार लिया है। इस अवतार के नूरी आकर्षण के कारण उन्होंने पश्चिम की बजाए पूर्व की तरफ सीस झुकाया। उनके अनुयायी उनके इस कार्य पर बहुत हैरान





हुए और उन्होंने इसका कारण पूछा। पीर जी ने बताया कि मैंने आज पूर्व की तरफ पटना शहर में एक प्रभु नूर का नज़ारा देखा है। वहां एक महापुरुष के घर एक ईश्वरीय पैगंबर ने जन्म लिया है। मैं उस बालक के दर्शन करना चाहता हूं। पीर जी अपने कुछ विशेष साथियों सहित सैंकड़ों मीलों का सफर तय करके गंगा किनारे पटना शहर में पहुंच गए। वहां जाकर उन्होंने लोगों से पूछा कि यहां किस महापुरुष के घर बालक ने जन्म लिया है।

पटना शहर में गुरु तेग़ बहादुर साहिब के सिक्ख सेवक बहुत थे। सब लोग गुरु परिवार को बहुत प्यार और सत्कार करते थे। वे तुरन्त उनको गुरु तेग़ बहादुर जी के घर ले गए।

वह सभी जानते थे कि गुरु तेग़ बहादुर जी के अलावा महान् महापुरुष अन्य कोई भी नहीं था तथा उनके घर ही एक प्रभावशाली बालक ने जन्म लिया था।

पीर जी ने दरवाज़े पर पहुंच कर बाला प्रीतम के दर्शनों की मांग की। उस समय घर में मामा कृपाल चंद, दादी माता नानकी जी और माता गुजरी जी मौजूद थे। वे पहले तो डर गए कि कोई जासूस या वैरी - दुश्मन ही न हो, लेकिन जब पीर जी के बारे में उनको पता चला तो उन्होंने सब को आदर मान के साथ दीवानखाने में बिठाया। पीर जी के आने की ख़बर सुनकर पटने की अन्य सिक्ख संगत भी वहां पर आ गई और सारा दीवान हाल प्रेमियों से भर गया। मामा कृपाल चंद जी बाला प्रीतम को लेकर दीवान हाल में आ गए। उनके साथ माता नानकी और माता गुजरी जी भी थे।

पीर भीखण शाह जी अपने साथ दो मिठाई के बर्तन (कुज्जे) भी लाए थे। बाला प्रीतम के दर्शन करके उन्होंने नमस्कार किया और उनके चरण स्पर्श किए। फिर उन्होंने दोनों बर्तन बालक श्री दशमेश जी की तरफ बढ़ाये और प्रार्थना की कि हज़ूर इनमें से आपका बर्तन (कुज्जा) कौन सा है। बालक श्री दशमेश जी ने दोनों बर्तनों पर अपने दोनों हाथ रख दिए।

पीर भीखण शाह ने फिर बड़े सत्कार के साथ दशमेश जी को नमस्कार किया और उनके कोमल छोटे छोटे चरणों को चूम लिया। दोनों बर्तन दशमेश को भेंट करने की बजाए, पीर जी ने वे बर्तन अपने शिष्यों को पकड़ा दिए। इन बर्तनों के बारे में सब को बड़ी हैरानी हुई। पीर जी के शिष्यों और उपस्थित सिक्ख संगत ने इन बर्तनों के भेद को समझाने के लिए बेनती की।

पीर जी ने कथन किया कि जब इस ईश्वरीय नूर ने जन्म लिया था तो मैं यह समझा था कि क्या यह हिन्दुओं का साथ देगा या मुसलमानों का। इस लिए मैंने एक बर्तन हिन्दुओं का प्रतीक बनाया था और दूसरा मुसलमानों का। मैंने यह सोचा था कि यदि यह हिन्दुओं वाले बर्तन पर हाथ रखेंगे तो यह हिन्दुओं की सहायता करेंगे और मुसलमानों का नाश करेंगे। यदि यह मुसलमानों के बर्तन पर हाथ रखेंगे फिर यह मुसलमानों का साथ देंगे और हिन्दुओं का नाश करेंगे। परन्तु दोनों बर्तनों पर अपने कोमल हाथ रखकर इन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि वे मुसलमानों और हिन्दुओं दोनों के पीर होंगे और दोनों की रक्षा करेंगे। वह केवल ज़ुल्म का नाश करेंगे और सब को प्रभु का नाम जपने के लिए प्रेरित करेंगे। इस लिए मैं अपने सभी शिष्यों और अन्य साथियों को बेनती करता हूं कि गुरु जी को सीस झुकाकर नमस्कार करो और उनसे मनवान्छित फल पाओ। इस तरह दर्शन करके भीखण शाह वापस अपने डेरे पर आ गए।

बाल-लीला

श्री दशमेश जी की बाल लीला भी न्यारी थी। आप एक साधारण बालक नहीं थे, बल्कि आप बहुत सुंदर, हंसमुख और फुर्तीले थे। जब आप बहुत छोटे थे तो हर व्यक्ति का दिल आप को उठाने और आपके साथ खेलने के लिए उत्तेजित होता था। आप कभी रोने वाली सूरत नहीं बनाते थे तथा न ही किसी छोटी मोटी बात पर चिड़ते थे। इस के विपरीत आप किसी रोते हुए को भी हंसा देते थे।

जब आप थोड़े बड़े हुए तो हम-उम्र साथियों के साथ खेलने लगे। आप साधारण खेल नहीं खेलते थे, बल्किअपने साथियों की दो टोलियां बना लेते थे और एक टोली दूसरी टोली का मुकाबला करती थी। आप के सभी साथी आप को अपना लीडर मानते थे और आप के हर आदेश को पूरा करते थे।



पंडित शिव चंद

उस समय पटने में एक परम माननीय पंडित शिव चंद जी रहते थे। वे बड़े सच्चे-सुच्चे ब्राह्मण थे जिस कारण पाखंडी और रूढ़ीवादी ब्राह्मण उनसे बड़ी नफ़रत करते थे। पंडित शिव चंद जी हर रोज़ सुबह गंगा नदी में स्नान करने जाते और वहां परम्परागत ढंग से देवताओं की पूजा में सच्चे मन से लगे रहते। वे अपने मन में एक सम्पूर्ण प्रन लेकर बैठे थे कि वे प्रभु के दर्शन करेंगे, लेकिन पंडित जी जितनी मेहनत, तपस्या और हिम्मत के साथ ठाकुरों की पूजा करते, उनको अनुभव होता कि वे प्रभु के दर्शनों से और दूर होते जा रहे हैं। प्रभु को पाने की जितनी उनकी इच्छा बढ़ती जा रही थी उतना ही ज्यादा वे गंभीर होते जा रहे थे।





एक दिन पंडित शिव चंद जी गंगा किनारे एकान्त में बैठे अन्तर्ध्यान हुए प्रभु की अराधना कर रहे थे। उनको उस समय ऐसे मालूम हो रहा था जैसे वे भगवान् के दर्शन कर ही लेंगे। उस समय श्री दशमेश जी खेलते खेलते उस स्थान पर जा पहुंचे जहां पंडित शिव चंद भक्ति कर रहे थे। शिव चंद को आंखें बंद कर समाधि में बैठे देखकर गुरु जी धीरे धीरे उनके पास गए और पंडित के कानों के पास मुँह करके बोले "पंडित जी! झात"। पंडित जी एकदम हड़बड़ाये और अपने सामने एक सुंदर बालक को देखकर हैरान रह गये। बालक की गोल गोल चमकदार आंखें, हँसता हुआ चेहरा और फुर्तीले शरीर को देखकर वे बुत बन कर रह गए और काफी समय तक टिकटिकी लगाए बालक की तरफ देखते रहे। उनको विश्वास हो गया कि प्रभु एक बालक का रूप धारण कर उन के

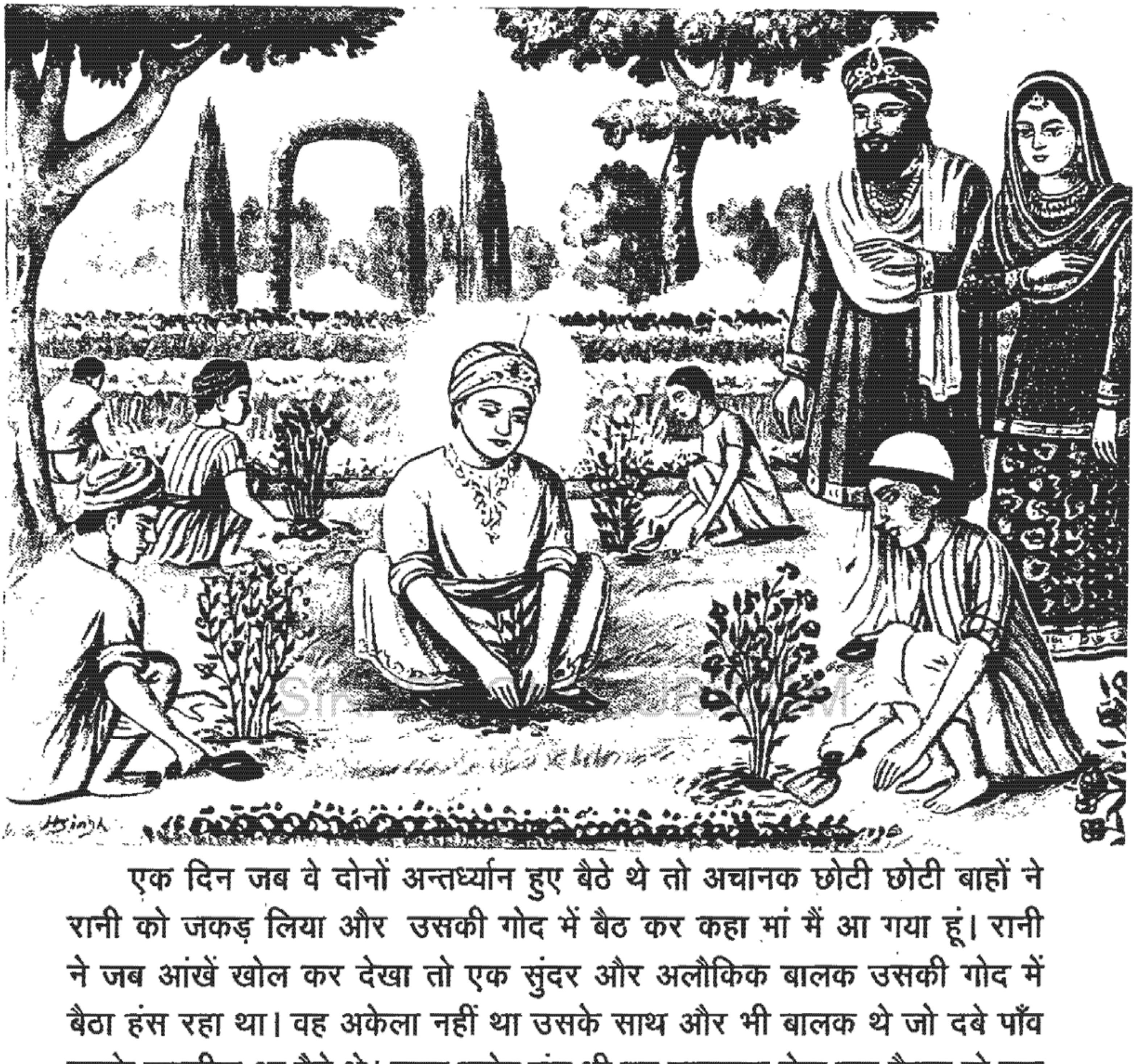
पास आ गए हैं और उनकी सभी इच्छाएं पूरी हो गई हैं। प्यार में डूबे हुए पंडित ने तुरन्त सिर झुका कर गुरु जी के आगे माथा टेका और कहा "तूं मेरा बाला प्रीतम हैं, आज मुझे प्रभु मिल गया है।"

उस दिन के बाद शिव चंद जी हमेशा बाला प्रीतम के दर्शनों के लिए आते और माथा टेक कर चले जाते। दूसरे ब्राह्मण उनको मजाक करते कि इतना ज्ञानवान बूढ़ा पंडित होकर एक छोटे बच्चे को नमस्कार करता है। लेकिन पंडित शिव चंद जी किसी की भी परवाह न करते थे और जब तक बाला प्रीतम पटने में रहे, वे हर रोज़ दर्शनों के लिए आते रहे।

राजा फतेह चंद मैणी

राजा फतेह चंद मैणी पटने का एक बहुत बड़ा ज़िमींदार था। वह हज़ारों एकड़ ज़मीन का मालिक था। सरकार की तरफ से उसको राजा का खिताब मिला हुआ था। किन्तु उसके घर कोई सन्तान नहीं थी। राजा और रानी पुत्र प्राप्ति के लिए सदा प्रभु के आगे बेनती करते रहते थे। पंडित शिव चंद जी भी उनके एक अच्छे मित्र थे। एक दिन राजा और रानी दोनों ने सोचा कि पंडित शिव चंद जी के पास जाकर बेनती करें कि हमारे घर पुत्र प्रदान करने के लिए प्रभु के आगे अरदास करें। यह इच्छा लेकर दोनों गंगा के किनारे पंडित शिव चंद के पास पहुंच गए। पंडित जी को उन्होंने अपनी मुश्किल के बारे में सब कुछ बताया। उन्होंने बताया कि हमारी लाखों की जायदाद निःसन्तान होने के कारण हमारे बाद लावारिस रह जाएगी। अगली दुनिया में भी उनको मुक्ति नहीं मिलेगी। पंडित शिव चंद जी ने उनकी बात सुन कर कहा "आपको घबराने की कोई ज़रूरत नहीं। हमने एक बालक में प्रभु को देखा है। सभी लोग उसको बाला प्रीतम कहते हैं। बाला प्रीतम आपकी सभी कामनाएं पूर्ण कर सकता है। परन्तु आपको उसकी आराधना करनी पड़ेगी। दिन रात बाला प्रीतम का ध्यान करो, वो ज़रूर आपको दर्शन देगा।"

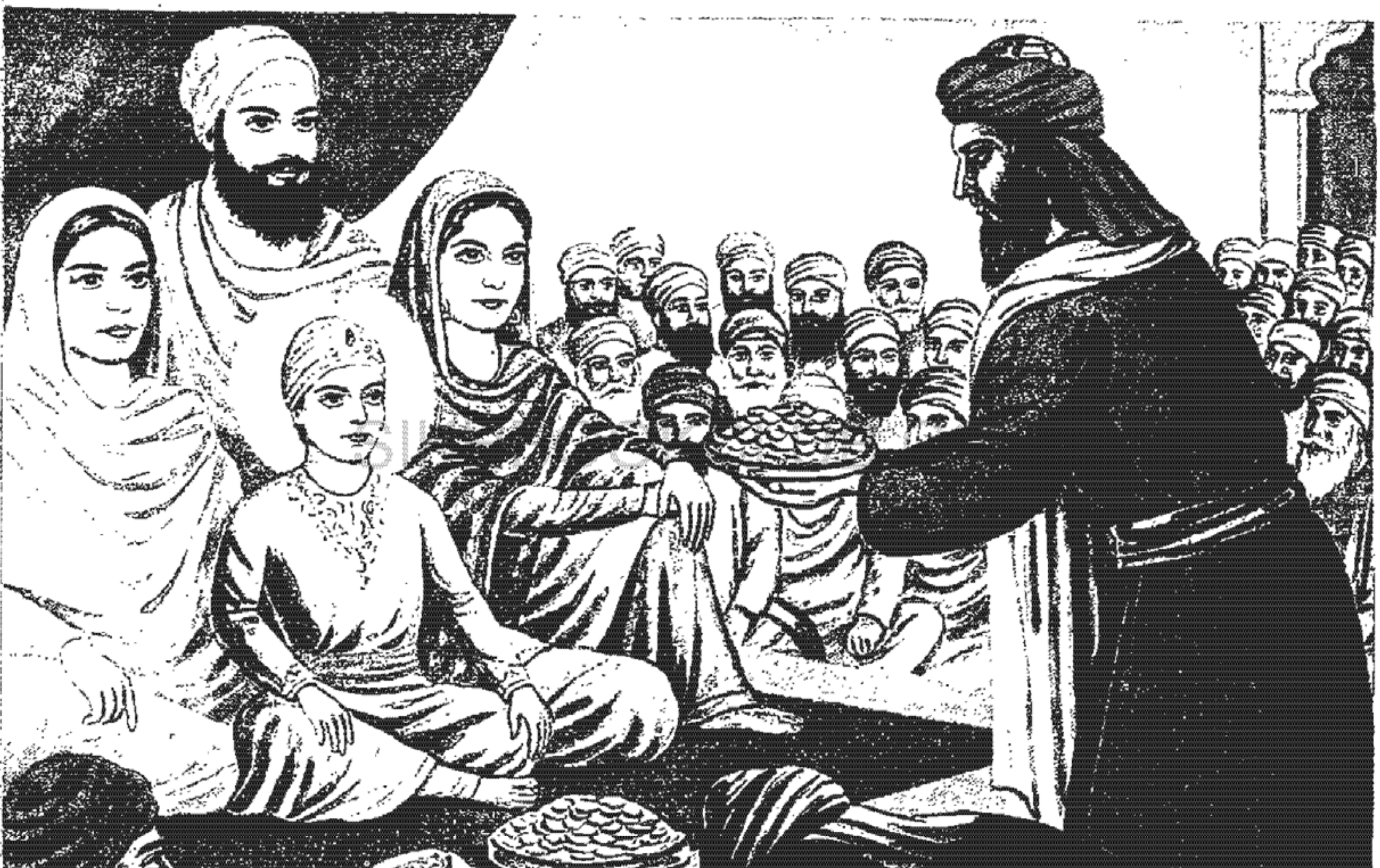
राजा फतेह चंद और उसकी रानी घर आ गए। रोज़ अन्तर्ध्यान होकर बाला प्रीतम का सिमरन करने लगे। परन्तु काफी समय बीत गया बाला प्रीतम नहीं आया, लेकिन वे दोनों निराश न हुए। बाला प्रीतम के दर्शनों की अभिलाषा उनमें और बढ़ी, पुत्र की प्राप्ति से अधिक अब वे बाला प्रीतम के दर्शनों को अनमोल समझने लगे थे।



एक दिन जब वे दोनों अन्तर्ध्यान हुए बैठे थे तो अचानक छोटी छोटी बाहों ने रानी को जकड़ लिया और उसकी गोद में बैठ कर कहा मां मैं आ गया हूं। रानी ने जब आंखें खोल कर देखा तो एक सुंदर और अलौकिक बालक उसकी गोद में बैठा हंस रहा था। वह अकेला नहीं था उसके साथ और भी बालक थे जो दबे पाँव उनके नज़दीक आ बैठे थे। राजा फतेह चंद भी यह चमत्कार देख कर हैरान हो रहा था। बाला प्रीतम ने हंसते हंसते कहा, "मां जी हमें बहुत भूख लगी है।"

रानी ने फतेह चंद को कहा कि जल्दी जाकर बाज़ार से मिठाईयां और फल ले आओ परन्तु बाला प्रीतम ने तुरन्त कहा, "हमने मिठाई नहीं खानी, हमें तो वह पूड़ियां और छोले खाने हैं जो बना कर अंदर रखे हैं।" रानी जल्दी से उठ कर अंदर से सारी पूड़ियां और छोले ले आई। बाला प्रीतम ने सारी चंगेर अपने हाथ में पकड़ ली और सारी पूड़ियां छोले राजा, रानी और अपने साथियों में बांट दिए, एक पूड़ी और कुछ छोले आप भी खाए।

उस दिन के बाद राजा फतेह चंद और उसकी रानी बाला प्रीतम के पक्के श्रद्धालु बन गए। बाला प्रीतम रोज़ अपने साथियों को लेकर जाते और पूड़ियां छोले खाते। बाग में खेलते, फल तोड़ते, पौधों को पानी देते और माली के साथ और पौधे भी लगाते रहते थे। आज भी श्री दशमेश जी के लगाए कई पौधे उस बाग में मौजूद हैं। रानी ने अब पुत्र की इच्छा छोड़ दी और अपने घर को गुरुद्वारा बना लिया जहाँ रोज़ पाठ व कीर्तन होता, जब तक बाला प्रीतम पटने में रहे वे रोज़ राजा और रानी को मिलने जाते रहे।



नवाब भाई रहीम बख्श और करीम बख्श

पटने में दो भाई रहीम बख्श और करीम बख्श रहते थे। वे बड़े ज़िमींदार थे और कई गांवों के मालिक थे। सरकार की तरफ से इनको नवाब का खिताब मिला हुआ था। उनकी ज़मीन में कई बाग भी थे। एक बार गुरु तेग़

बहादुर जी सिक्खी का प्रचार करते करते उनके एक बाग में आ ठहरे। बाग असल में मुरझा चुका था। गुरु जी जब कुछ दिन इस बाग में ठहरे वहां सत्संग व कीर्तन का दौर चलता रहा तो वह बाग हरा हो गया। दोनों भाई गुरु जी की संगत से बहुत प्रभावित हुए और गुरु जी के सिक्ख बन गए।

जब श्री दशमेश ने अवतार धारण किया तो वे दोनों भाई बहुत तोहफ़े लेकर आए। बालक साहिबज़ादे के दर्शन करके वे बहुत खुश होते थे और हर रोज़ माथा टेकने आते और कुछ न कुछ भेंट ज़रूर करते। बाला प्रीतम भी उनको बहुत प्यार करते थे। गुरु घर के प्यार के कारण उन्होंने वह बाग़ जो कि गुरु साहिब के चरण पड़ने से हरा-भरा हो गया था और काफी ज़मीन गुरु जी के लंगर के नाम लगा दी। वह बाग़ और ज़मीन अब तक गुरुद्वारे के नाम पर चली आ रही है। जब बाला प्रीतम पंजाब की तरफ चल पड़े तो वे भाई बहुत उदास हो गए। उन्होंने प्रार्थना की कि मालिक अब आपके दर्शन कैसे हुआ करेंगे। बाला प्रीतम ने कहा कि रोज़ जपु जी साहिब का पाठ किया करो। पाठ का भोग पड़ने पर हमारे दर्शन हुआ करेंगे।

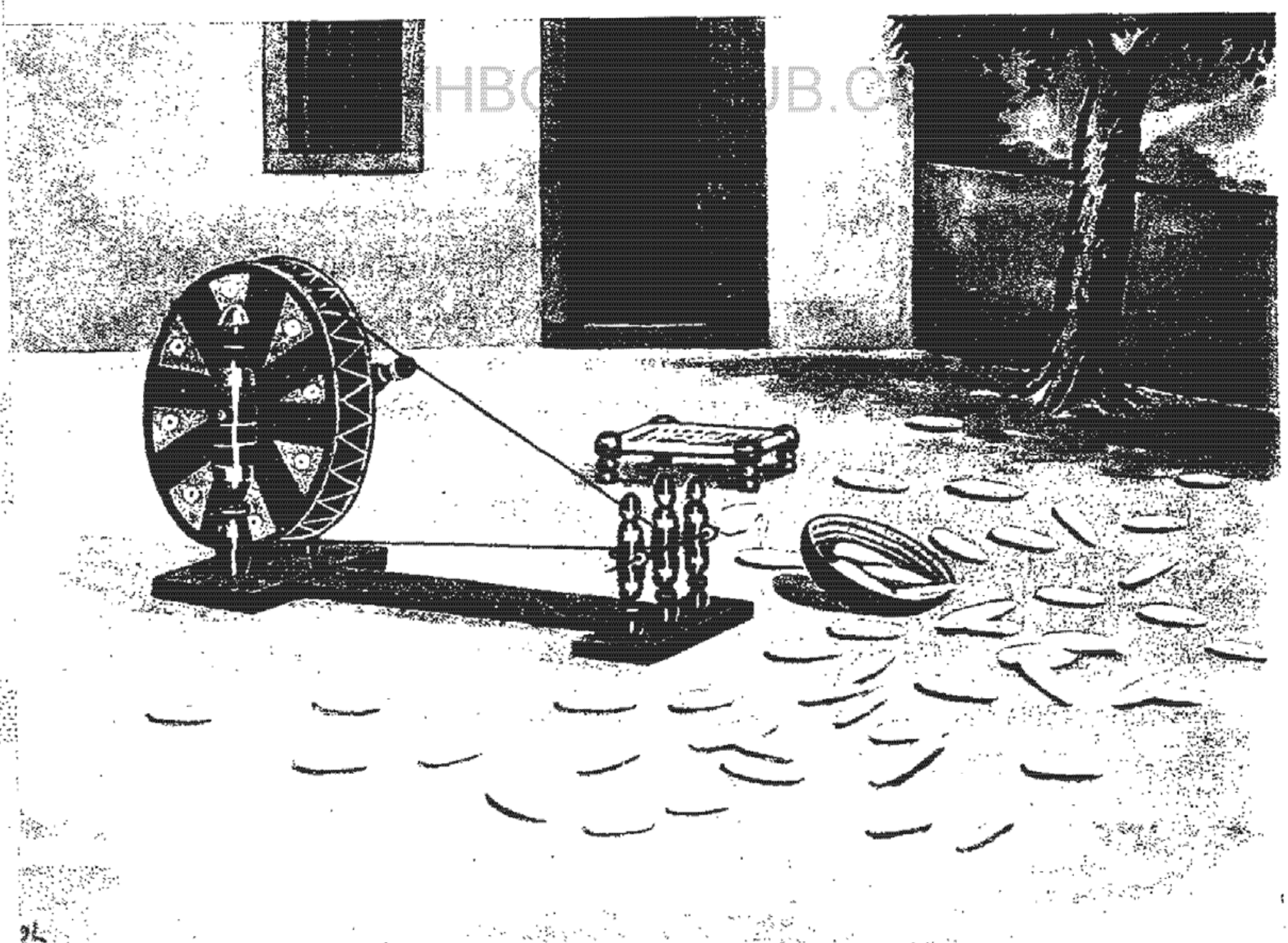
गुरु की कृपा

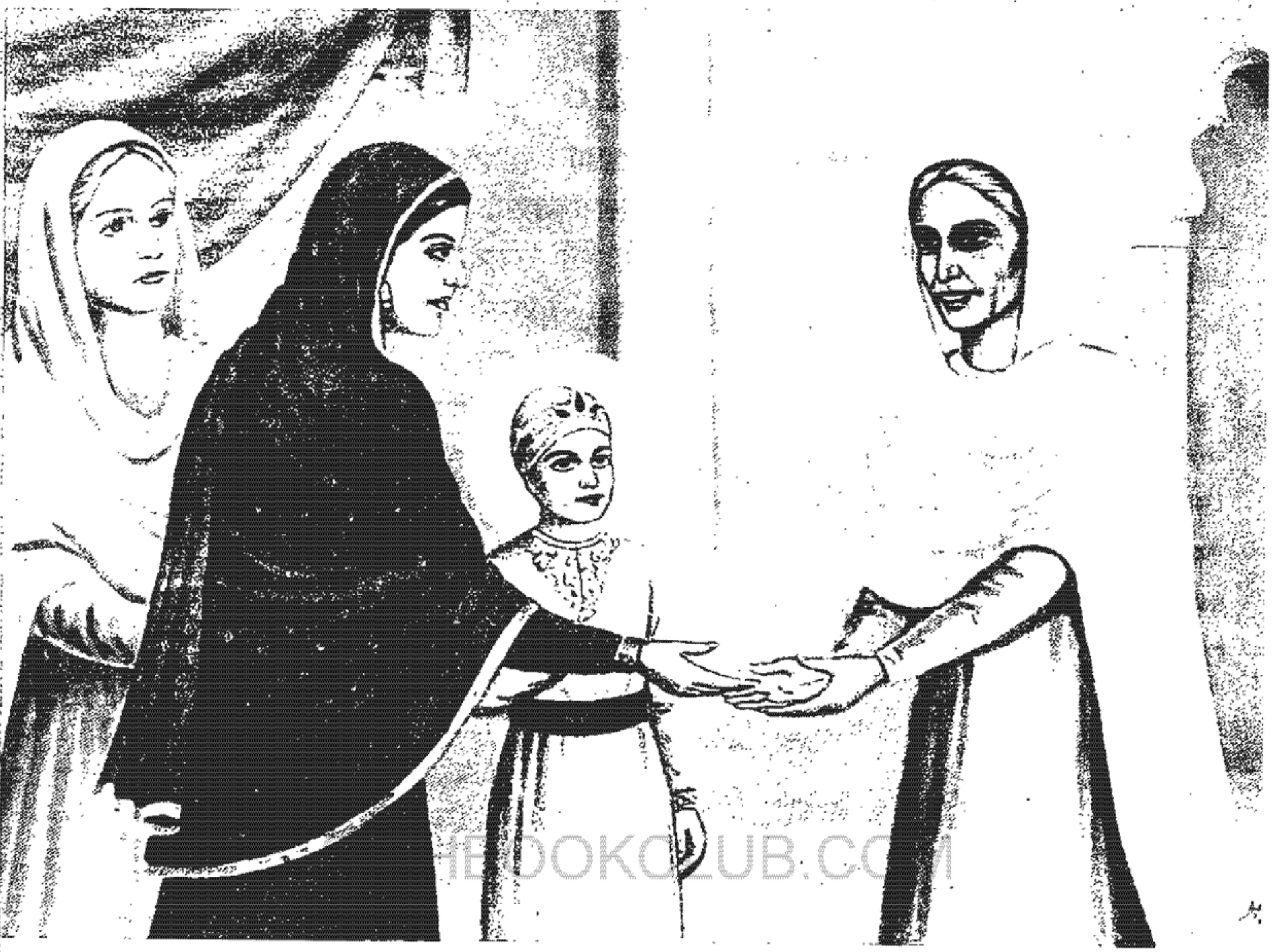
जब गुरु तेग़ बहादुर जी बंगाल और आसाम की संगतों को तारने के लिये चले गये तब लोग अपनी मनोकामनाएं पूरी करने के लिये बाल (गुरु) गोबिंद राए के पास पहुँचने लगे। एक दिन एक स्त्री बहुत श्रद्धा लिये बाल (गुरु) के पास आई। उसने निवेदन किया, "बाल भगवान मेरे घर औलाद नहीं होती। बांझ स्त्री की भी कोई जिंदगी होती है। इसलिए मैं बहुत दुखी हूं, मुझे एक पुत्र की दात बख्शों।" बाल प्रीतम ने उत्तर दिया कि यह सब कुछ भगवान के हाथ में है, प्रभु की भगती करो, वो आपकी सब ज़रूरतें पूरी करेंगे। वह स्त्री माता गुजरी के चरणों में गिर पड़ी और निवेदन करने लगी। तब माता गुजरी जी ने कहा, "यह स्त्री आपके पिता जी की बहुत उपासक है। इन पर कृपा करे।" यह सुनकर बाल प्रीतम हँसते हुए कहने लगे, इन के पास बहुत बड़ा बेड़ा है, अगर यह मुझे एक बेड़ी दे देगें तो भगवान इनको पाँच पुत्रों की दात बख्शेगें। यह सुनकर स्त्री बहुत प्रसन्न हुई और उसने बाल प्रीतम को एक सुन्दर बेड़ी अपने पति के द्वारा भेंट की। गुरु की कृपा से उस स्त्री के घर पाँच पुत्र पैदा हुये।

चरखे वाली माई

बाला प्रीतम के खेल भी बड़े अनोखे और वचित्र होते थे। वे अगर किसी व्यक्ति को तंग करते तो उसमें भी कोई रहस्य ही होता। गंगा नदी के किनारे एक कोढ़ी रहता था जो कि नदी में कभी भी स्नान नहीं करता था। एक बार जब वह नदी के किनारे बैठा था तो बाला प्रीतम ने अन्य बच्चों को साथ ले जाकर उसे धक्का देकर पानी में फैंक दिया। वह रोया, चिल्लाया व बच्चों को कोसने लगा। बाला प्रीतम तथा अन्य बच्चे बाहर खड़े तालियां मार-मार हंसते रहे।

परन्तु जब वह कोढ़ी ज़ोर लगा कर नदी से बाहर निकला तो अपने शरीर को स्वस्थ देख कर बहुत हैरान हुआ। उसका कोढ़ दूर हो गया था। वह बाला प्रीतम के चरणों में गिर पड़ा। इस तरह गुरु जी किसी को दुखी भी करते थे



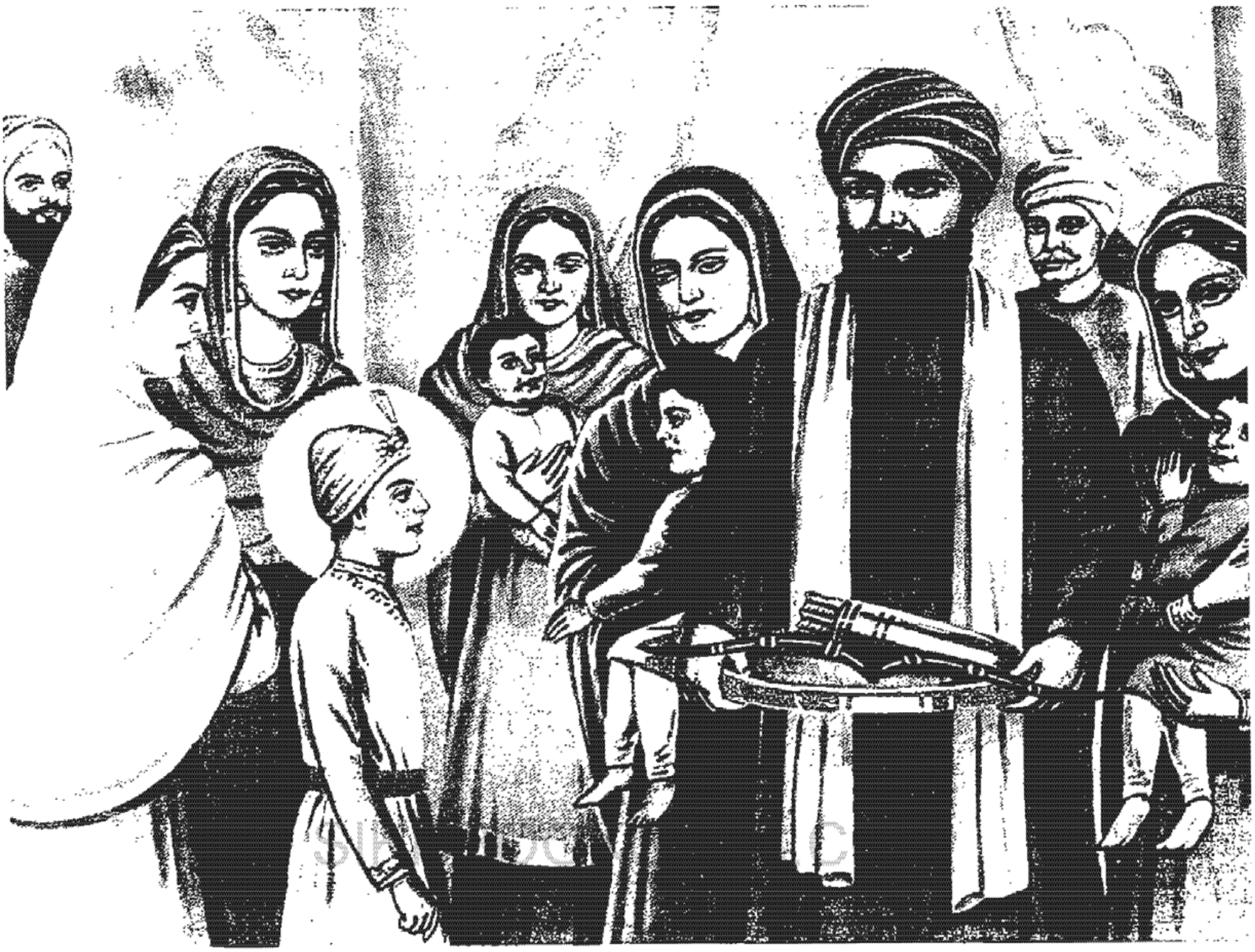


तो उसके लाभ के लिए। गुरु घर के नज़दीक ही एक माई रहती थी। वह बहुत ग़रीब थी। उसकी कोई औलाद नहीं थी। इस लिए वह चरखा कात कर अपना गुज़ारा करती थी। जब माई चरखा न कात रही होती तो बाला प्रीतम उसके घर जाकर सारी छल्लियां और पूनीयां आंगन में बिखेर देते। वह माई बहुत दुखी होती और शिकायत लेकर माता गुजरी जी के पास आती। माता जी उसको काफ़ी पैसे देकर वापिस भेज देती। एक दिन जब माता जी ने बाला प्रीतम से पूछा कि वह छल्लियां और पूनीयां क्यों बिखेरता है तो उन्होंने कहा, "मैं उसकी छल्लियां और पूनीयां इस लिए बिखेर देता हूं कि उसकी गरीबी कट जाए। जब वह शिकायत लेकर आपके पास आती है तो आप बहुत सा धन देकर उसे विदा करती हैं।" माता जी बालक की इन वचित्र बातों को सुनकर बहुत खुश हुई।

जगता सेठ

जगता सेठ पटने का एक बहुत बड़ा व्यापारी था। उसका व्यापार हिन्दुस्तान के बड़े बड़े शहरों में चलता था। सैंकड़ों लोग उसके नौकर थे और बड़ी बड़ी हवेलियां थी। परन्तु एक बात की कमी थी कि उसके घर कोई पुत्र नहीं था। उसने कई पीरों, फकीरों की मन्नतें मांगी, हज़ारों रुपये दान में बांट दिए, परन्तु उसकी मनोकामना पूर्ण न हुई। गुरु तेग़ बहादुर जी जब पटने पहुंचे तो सेठ को पता चला कि पंजाब में से एक उच्च कोटि के संत आए हैं। वह हर रोज़ गुरु जी की संगत में आने लगा। कीर्तन सुनता और गुरु जी के उपदेश सुनकर निहाल हो जाता। उसका मन सच्चे प्रभु के नाम की तरफ लग गया। परन्तु फिर भी मन में कई बार आता कि अगर प्रभु एक पुत्र दे देता तो मैं सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो सकता था।





एक दिन सत्संग में बैठे हुए उसके हृदय में विचार आया कि सच्चे गुरु सब कुछ जानते हैं कभी मेरी भी सुनेंगे। सत्संग काफी समय तक चलता रहा, समाप्ति पर सारी संगत गुरु का लंगर सेवन करने के पश्चात् अपने अपने घर चली गई। लेकिन जगता सेठ आज लंगर खाने भी नहीं गया था, वहीं बैठा था तथा बैठा रहा। गुरु जी ने जब देखा जगता बैठा हुआ है, कहने लगे, "जगता तुम रोज़ ही कुछ न कुछ लंगर के लिए लेकर आते हो, आज हमारा भी मन है, कुछ घर के लिए ले जा।" जगते का चित्त खिल गया, मन खुशी से भर गया। सोचने लगा आज गुरु जी ने कुछ देने के लिए कहा है, पर मैं मांगता कुछ नहीं। गुरु साहिब ने कहा जगता मेरे पास आ। जगता पास आ गया। गुरु जी के पास उस समय तीन सेब पड़े थे। उन्होंने कहा, "जगता ये तीन सेब आज गुरु जी के लंगर में बचे पड़े हैं, इनको हमारा प्रसाद समझ कर ले जाओ।"

जगता सेठ बहुत प्रसन्न हुआ। तीनों के आन्तरिक भाव को वह समझ गया था। वे सेबों को बड़े सत्कार से कपड़े में बांध कर घर ले गया। पुत्र की उम्मीद में उसने तीन शादियां करवाई हुई थीं। तीनों पत्नियां जगते को प्रसन्न चित्त देख कर बहुत खुश हुईं। तीनों अभी जगते से प्रसन्नता का कारण पूछने ही वाली थी कि जगते ने कपड़े में से निकाल कर तीन सेब उनको दिखाए और कहने लगा, "ये तीनों सेब गुरु जी ने दिए हैं, आप बड़े सत्कार से गुरु जी का ध्यान करके एक एक सेब खा लो। मेरा पक्का निश्चय है कि सतिगुरु जी ज़रूर कृपा करेंगे।"

समय बीतने पर जगते की तीनों पत्नियों की गोद से एक एक पुत्र ने जन्म लिया। गुरु तेग़ बहादुर साहिब उस समय आसाम की तरफ गए हुए थे। इस लिए जगता सेठ तीनों पत्नियों और पुत्रों को लेकर माता गुजरी जी को माथा टेकने ले आया। उसके पश्चात् वह गुरु घर का अत्यन्त श्रद्धालु बन गया। बाला प्रीतम को वह बहुत प्यार करता था और हमेशा देश के अन्य भागों से बढ़िया बढ़िया खिलौने और तोहफ़े मंगवा कर दिया करता था। एक बार उसने बाला प्रीतम से पूछा कि वह बाहर जा रहा है। उनके लिए कौन सा तोहफ़ा लेकर आए, गुरु जी ने कहा, एक सुंदर कटार और तीर कमान लाया जाए। जगते सेठ ने एक बहुत बढ़िया कटार और तीर कमान गुरु जी को भेंट किये।

निशाने बाज़ी

बाला प्रीतम के बचपन में खेल भी वचित्र थे। वह बच्चों की दो टोलियां बना कर लड़ाई का अभ्यास करते। एक टोली के मुखी वह आप बन जाते और दूसरी टोली के किसी दोस्त को मुखी बना देते। सारे शहर में उनकी बाल सैना दगड़ दगड़ करती भागती फिरती। खिलौनों से खेलने की बजाए वह तीर कमान और गुलेल चलाने का अभ्यास करते। गुरु जी जिस हवेली में रहते थे, उस हवेली में एक बहुत बड़ा कुआँ था। जिसका पानी बहुत साफ और मीठा था। उस पानी में दाल भी बहुत जल्दी गल जाती थी। सारे मुहल्ले में अन्य कोई कुआँ न होने के कारण नज़दीक के घरों की सभी औरतें इस कुएँ पर पानी भरने आती। उनके घड़े कच्चे होते थे। जब वे पानी भर कर चल पड़ती तो गुरु जी गुलेल का निशाना लगा कर घड़ा तोड़ देते। सारा पानी गिर जाता



और औरतें माता नानकी जी या माता गुजरी जी के पास शिकायत करती। माता जी उनको दिलासा देती और घड़े के मोल से ज्यादा पैसे दे देती। वे औरतें खुश हो जाती, क्योंकि उनको एक तो नया घड़ा मिल जाता और कुछ पैसे भी बच जाते। कई औरतें जब पानी से भीगी हुई शिकायत करने आतीं तो बाला प्रीतम कहते, "मैने तुम्हारा घड़ा नहीं फोड़ा है आपकी किंस्मत फोड़ी है, अब आपके भाग्य जाग जायेंगे।" कई बार किसी औरत के माथे पर या सिर में पत्थर लग जाता। वह जब रोती रोती माता जी के पास आती तो माता जी उसको बहुत पैसे देकर खुश कर देती।

पटने से रवानगी

गुरु तेग़ बहादुर जी कुछ समय आसाम में रह कर पटना साहिब आ गए। साहिबज़ादे को मिल कर वे बहुत खुश हुए। उनका एक पल भी उनसे दूर होने को मन नहीं करता था। परन्तु जिस काम के लिए वे इस दुनिया में आए थे

उस लक्ष्य की तरफ उनका पूरा ध्यान था। पंजाब में उस समय हालात बहुत खराब हो रहे थे, मुसलमान हाकम प्रजा पर बहुत ज़ुल्म कर रहे थे। औरंगज़ेब की कठोरता हर रोज़ बढ़ती जा रही थी। तलवार के ज़ोर से लोगों को मुसलमान बनाया जा रहा था। इस लिए गुरु साहिब कुछ समय पटना में रह कर आनन्दपुर साहिब चले गए, जाते समय वे कह गए कि हालात ठीक होने पर वे जल्दी ही सारे परिवार को आनन्दपुर साहिब बुला लेंगे।

पिता जी के पंजाब चले जाने पर बाला प्रीतम भी हर समय पंजाब जाने की प्रतीक्षा करने लगे। वे चाहते थे कि जल्दी से जल्दी पंजाब जाया जाए। पिता जी को मिलने की चाह और तीव्रता बढ़ती जाती।

कुछ समय के बाद आनन्दपुर साहिब से गुरु जी का संदेश मिला कि सारा परिवार वहां आ जाए। बाला प्रीतम जी और सारा परिवार यह खबर सुनकर बहुत खुश हुए लेकिन सारा पटना उदास हो गया। जब यह ख़बर पटने में पहुंची तो सतिगुरु के प्रेमियों की आंखें भर आईं और वे ऐसे अनुभव करने लगे जैसे वे अपना सब कुछ खो रहे हों।

गुरु की हवेली सारे मित्र प्रेमियों के साथ भर गई। बाला प्रीतम के साथी जो उनके साथ मिलकर खेलते थे, छोले पूड़ियां और कड़ाह खाते थे, इस विरह से ज्यादा ही उदास हो गए थे। वे बार बार यह कहते थे, "अब हमारा लीडर कौन होगा जो हमें टोलियां बना कर फौजी लड़ाई का अभ्यास करवाएगा।"

बाला प्रीतम ने उनको समझाया कि उनको चिंता करने की कोई ज़रूरत नहीं जब वे कोई खेल मुझे याद करके खेला करेंगे तो मैं उनके बीच हुआ करूंगा।

राजा फतेह चंद और उसकी रानी भी बहुत उदास थे, रानी बार बार साहिबज़ादे को कस कस कर आलिंगन कर रही थी और सगी मां की तरह आंसू बहा रही थी। तब दशमेश ने उनको धीरज दिया और कहा, "मैं सदा आपके अंग संग रहूंगा। जब तक मेरे साथियों को आप छोले पूड़ियां खिलाओगे, मुझे उनके बीच पाओगे"। बाला प्रीतम ने राजा और रानी को अपनी तरफ से एक तलवार, एक कटार और पोशाक भेंट की और कहा, "जब भी मेरी याद आए इन वस्तुओं को देख लिया करना, इनके बीच मैं नज़र आऊंगा। आप सदा बाणी का पाठ करना और प्रभु में ध्यान लगाना, आपकी समस्त व्याकुलता दूर हो जाएगी।"

पंडित शिव चंद भी रवानगी की ख़बर सुन कर पहुंच गया था। वह भी चुपचाप खड़ा था। गुरु साहिब ने उसको भी धीरज दिया और कहा, "आप अपनी तपस्या से सच्चे प्रभु के नज़दीक पहुंच गए हो, मैं आपको रोज़ सुबह दर्शन दिया करूंगा। आपका कल्याण हो गया है और दो जहानों में आप मुक्त हो गए हो।"

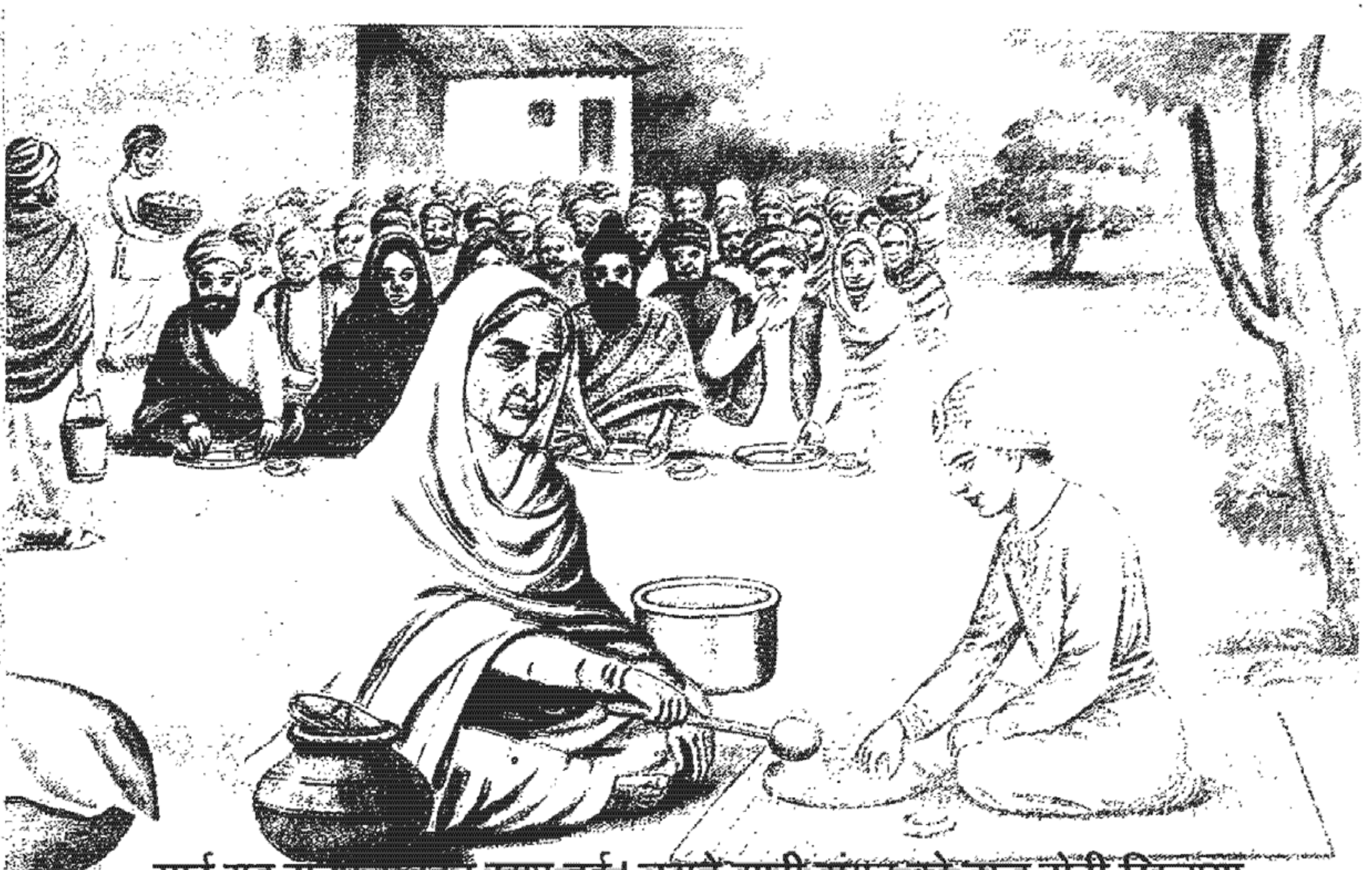
जगते सेठ ने रवानगी की सभी तैयारियां कर दी थीं। वह बड़ी सुंदर-सुंदर गाड़ियां सजाकर लाया था। रास्ते में सभी रुकने वाले स्थानों पर उसने अपने आदमी भेज दिए थे तांकि गुरु परिवार को सफ़र में कोई मुश्किल न आए। गुरु जी को भेंटें बांटते देख कर उसने भी नम्रता सहित दर्शनों की भेंट मांगी, गुरु जी ने कहा, "सेठ जगते हमारी रवानगी का प्रबंध करके तूने केवल हमें ही नहीं सारे जगत को जीत लिया है। हर रोज़ सवेरे संगत में जाना, वहां पर हमारे दर्शन होंगे।

बाला प्रीतम और उनका सारा परिवार पालकियों, डोलियों और गाड़ियों में सवार हो गया, गाड़ियां चल पड़ीं पर पटना निवासी कोई वापस नहीं हुआ। अगले पड़ाव तक छोड़ने के लिए सभी साथ साथ चल पड़े।

हांडी साहिब

पहला पड़ाव दानापुर था। पटने की सारी संगत यहां तक साथ आई थी। बाला प्रीतम पालकी में सवार थे, माता नानकी और माता गुजरी डोलियों में बैठे थे। जगते सेठ के कर्मियों ने यहां रहने का प्रबंध किया था। संगत भी उस समय वापस जाना नहीं चाहती थी, इस लिए सारी संगत के रहने का इंतजाम भी कर दिया गया।

दानापुर में एक माई रहती थी। एक बार गुरु तेग़ बहादुर साहिब जब इस कस्बे में आए थे तो इस माई ने एक हांडी में खिचड़ी बना कर गुरु साहिब को खिलाई थी। माई ने अभी तक वो हांडी बड़े प्यार से सम्भाल कर रखी थी। जब उस माई को पता चला कि साहिबज़ादे और उनका परिवार आज यहां आए हुए हैं तो वह माई गुरु परिवार को आकर मिली। हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि आज का लंगर उनके पास करें। उसका प्रेम देख कर सारे उसका लंगर खाने के लिए मान गए। पर साहिबज़ादे ने कहा, "माता जी बाकी सब दाल रोटी खायेंगे, परन्तु मैं उस हांडी में बनी हुई खिचड़ी खाऊंगा, जिस हांडी की खिचड़ी सतिगुरु भी खा कर गए थे।"



माई यह सुनकर बहुत खुश हुई। उसने सारी संगत को दाल रोटी खिलाया और गुरु जी के लिए खिचड़ी तैयार करके लाई। माई जी की हांडी के कारण बाद में जो संगत माई जी के घर इकट्ठी होती, उसका नाम हांडी वाली संगत पड़ गया। आज जो यहां गुरुद्वारा है उस का नाम हांडी साहिब है।

अगले दिन पटने की संगत प्रीत भरी विरह का दुख लेकर वापस चली गई और गुरु परिवार लखनौर की तरफ चल पड़ा।

लखनौर

लखनौर के मसंदों ने गुरु परिवार के ठहरने के लिए अच्छा प्रबंध कर दिया था। बाला प्रीतम तो बड़े उत्तेजित थे कि जल्दी ही वे अपने पिता जी को जा मिलें लेकिन मौसम ने कुछ ऐसी रुकावट डाली कि उनको काफी समय लखनौर में ठहरना पड़ा। परन्तु बाल पातशाह हर स्थान पर अपने दिल को लगाना जानते थे। उन्होंने यहां पर भी अपनी उम्र के लड़के इकट्ठे किए और उनको फ़ौजी शिक्षा देनी शुरू कर दी। गतके बाज़ी का रोज़ अखाड़ा लगता। जो बालक जीत जाता उसको अपनी तरफ से ईनाम देते। कुश्तियों का भी अखाड़ा लगता। छोटे छोटे बालक एक दूसरे के साथ हाथ पंजा लड़ाते। सभी बच्चों को गुलेलें बना कर देते और निशाने लगाते।

लखनौर तथा नजदीकी गांव के बच्चों के लिए तो हर समय मेला ही लगा रहता था। गुरु घर के प्रेमियों को भी जब पता चला तो वे बड़े उत्साह से आते, सुंदर सुंदर तोहफे पेश करते और नाम दान के भण्डार लेकर आनंदित हो जाते।

लखनौर में उस समय कोई अच्छा कुआँ या बावली नहीं थी। एक कुआँ था जिसका पानी बड़ा खारा और पीने योग्य नहीं था। स्थानीय संगत ने माता जी के आगे प्रार्थना की कि उनको एक कुआँ लगवा कर दिया जाए जिसका पानी मीठा हो।

माता जी ने अपने खर्चे से एक कुआँ खुदवाया। इस का पानी बड़ा निर्मल और स्वादिष्ट था। इसके बाद एक बावली भी तैयार करवाई गई तांकि आता जाता राही पानी से प्यासा न जाये। जब बाला प्रीतम लखनौर में ठहरे हुए थे तो पीर भीखण शाह को भी पता चला। वे बाला प्रीतम के अवतार समय उनके दर्शन करने पटना साहिब गए थे। आज कल वे करनाल ज़िले के ठसके गाँव में रहते थे।

जब पीर जी लखनौर पहुंचे तो उस समय बाल गुरु जी अपने साथियों को गतका सिखा रहे थे। पीर जी उनके पास पहुंचे और झुक कर सात बार सलाम किया। गुरु जी ने भी खेलना छोड़ कर पीर जी को बांहों में ले लिया और अपने घर ले आए। पीर जी को उन्होंने बैठने के लिए आसन दिया और स्वयं उनकी गोद में जा बैठे। पीर जी के सभी साथी गुरु जी के इस स्नेह और प्यार को देखकर बहुत खुश हुए और सभी ने बारी बारी गुरु जी के आगे सीस झुकाया। पीर जी कुछ दिन यहां ठहरे और बाला प्रीतम के कौतुक देखकर कुर्बान जाते। सत्संग तथा कीर्तन का आनन्द प्राप्त करते रहे। बाला प्रीतम को शहद जैसे मीठे वचनों ने उन्हें बाँध ही लिया था। वापिस जाते हुए पीर जी ने बाला गुरु जी से प्रार्थना की कि उन पर कृपा दृष्टि की जाए। गुरु जी ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया, "पीर जी आपका डेरा हमेशा ही चलता रहेगा। प्राय: एक ईश्वर पर विश्वास करना, वह सदा देने वाला है।"

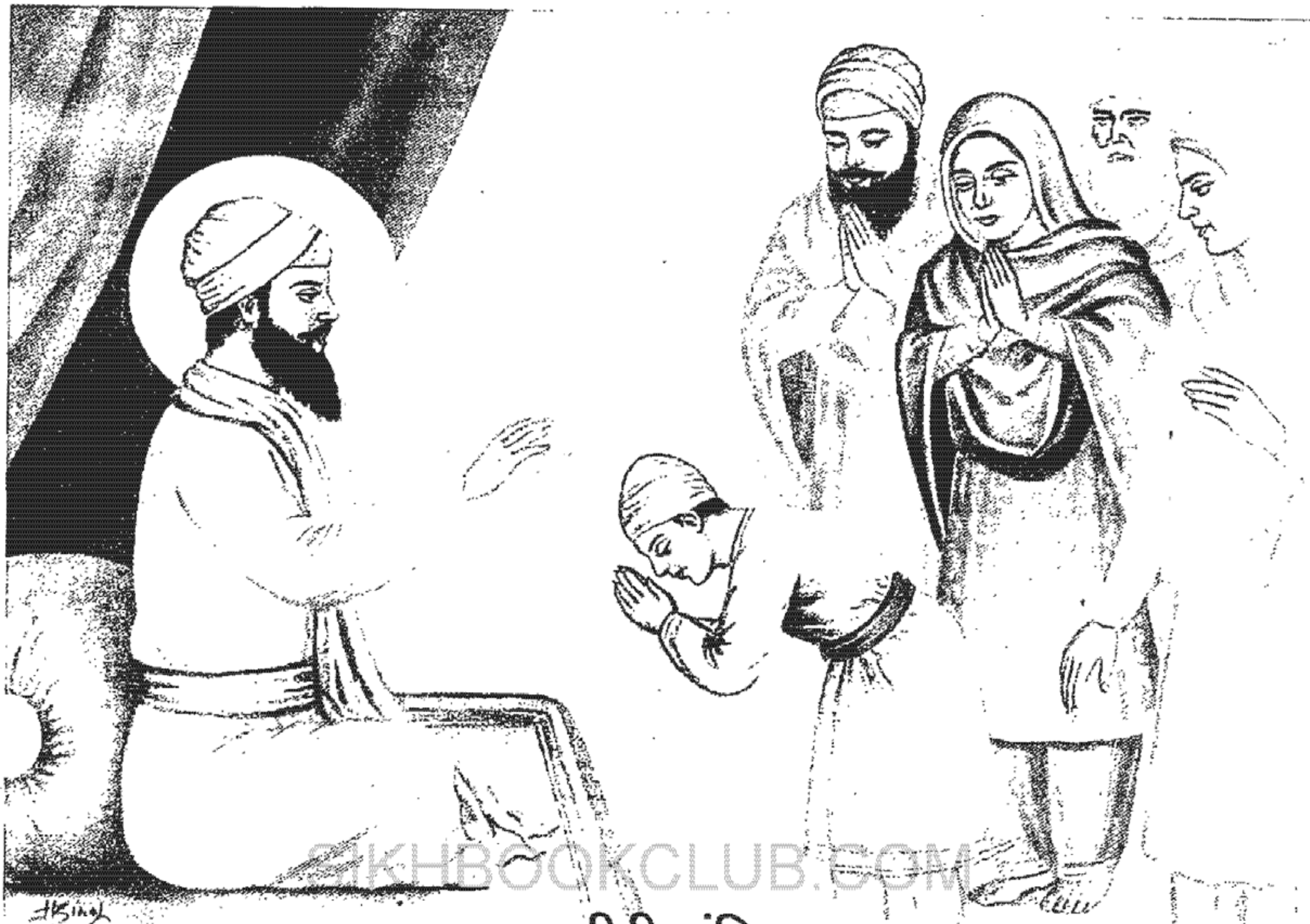
गुरदेव पिता जी से मेल

लखनौर में रहते हुए बाला प्रीतम जी हर समय यही इच्छा रखते थे कि किसी भी वक्त अपने गुरदेव पिता जी की गोद में जा बैठें। आखिर उनकी मुराद पूरी हुई। जब बरसात समाप्त हुई और नदियों व नालों का पानी भी नीचे उतर गया तब सतिगुरु तेग़ बहादुर जी ने अपने विश्वसनीय सिक्खों को गुरु परिवार को लेने भेजा।

संदेश मिलते ही सारा परिवार झटपट तैयार हो गया। लेकिन जब यह ख़बर लखनौर और उसके इर्द गिर्द पहुंची तो इलाके की सारी सिक्ख संगत् वहां पहुंच गई। बाला प्रीतम ने अपने चमत्कारों से कुछ महीनों में ही सारे इलाके को मोह लिया था। कोई भी सिक्ख उनको रुकने के लिए तो नहीं कह सकता था, लेकिन बिछुड़ने को भी किसी का मन नहीं कर रहा था। गुरु जी ने सभी को दिलासा दिया और सब को नाम दान प्रदान किया।

गुरु परिवार पहले की तरह ही पालकियों, डोलियों और गाड़ियों पर सवार होकर आनन्दपुर साहिब की तरफ चल पड़ा। रोपड़ आदि होते हुए सारा परिवार कीरतपुर जा पहुंचा। कीरतपुर गुरु तेग़ बहादुर जी के भाइयों के सभी परिवार रहते थे। सभी रिश्तेदार बड़े प्रेम और उत्साह के साथ मिले। बाला प्रीतम को देख कर सभी को श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब की याद आई। क्योंकि बाला प्रीतम अपने दादा की तरह ही फुर्तीले, साहसी और ताकतवर थे। बाला प्रीतम सभी परिवारों को मिले और उन सभी स्थानों के दर्शन किए जो उनके दादा जी के साथ संबंधित थे।

अगले दिन सारा परिवार आनन्दपुर साहिब की तरफ चल पड़ा। आनन्दपुर साहिब से भी बहुत सी संगत बाला प्रीतम को आगे लेने के लिए आ रही थी। रास्ते में दोनों संगतों के मेल हो गये। दोनों संगतें शब्द गाती हुई आनन्दपुर साहिब पहुंच गई। उस समय गुरु साहिब दरबार में विराजमान थे। जब उन्होंने बाहर जयकारों और शब्द गायन की आवाज सुनी तो आप उठ कर दरवाजे की तरफ आए। बाला प्रीतम जी पालकी में से निकले और दौड़ कर अपने पिता जी के चरणों में पड़ गए व चरण स्पर्श किए। गुरदेव पिता जी ने अपने पुत्र को उठा कर सीने से लगा लिया।



कश्मीरी पंडित

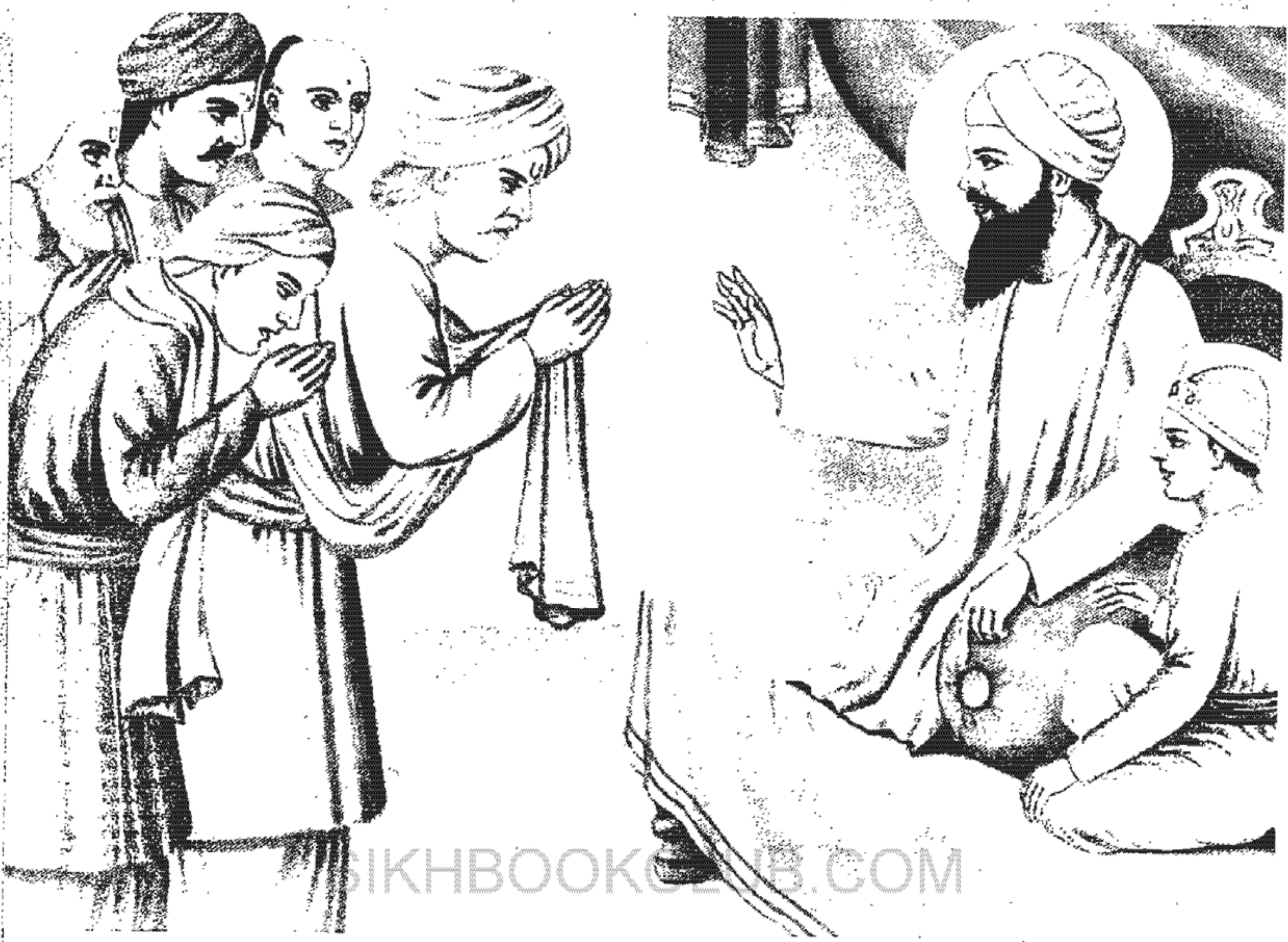
जब से औरंगज़ेब हिन्दुस्तान का बादशाह बना था तो वह हिन्दुओं पर बहुत ज़ुल्म कर रहा था। हिन्दुओं पर कई प्रकार के टैक्स लगाए गए थे, जबकि मुसलमानों को इसकी छूट दे रखी थी। वह जबरदस्ती हिन्दुओं को मुसलमान बना रहा था। जो भी अपना धर्म बदलने से इन्कार करता तो उसका कत्ल कर दिया जाता था। हिन्दुओं में ब्राह्मण ऊंची जाति के माने गए हैं। इस लिए उसका विचार था कि यदि ब्राह्मणों को मुसलमान बना लिया जाए तो शेष हिन्दू अपने आप ही मुसलमान बन जाएंगे। उस समय कश्मीरी पंड़ितों को सर्वोच्च जाति का समझा जाता था। यदि कश्मीरी पंडितों को मुसलमान बना लिया जाता तो सभी हिन्दुओं ने सरलता से ही इस्लाम धर्म प्रवान कर लेना था। इस लिए औरंगजेब ने कश्मीर के सूबे को आज्ञा दी कि कश्मीरी ब्राह्मणों से कठोर व्यवहार करे तथा उन्हें इस्लाम प्रवान करने के लिए मजबूर करे। सूबा कश्मीर ने जब सभी पंडितों को औरंगज़ेब का हुक्म सुनाया तो उन्होंने सोचने के लिए छः मास की अवधि मांगी। सूबे ने समय तो दे दिया लेकिन साथ में यह भी कह दिया कि छः मास के पश्चात् सभी के इस्लाम धर्म प्रवान करना पड़ेगा।

कश्मीरी पंडित अब बड़ी मुश्किल में फंस गए थे। वे पांच महीने तक भागदौड़ करते रहे, लेकिन उनकी समस्या हल न हो सकी। वे सभी पहाड़ी राजाओं को भी मिले परन्तु वे किसी भी प्रकार की मदद करने को तैयार नहीं थे।

इसी दौरान श्री गुरु तेग़ बहादुर जी के साथ इर्ष्या रखने वाले किसी व्यक्ति ने उनको यह सलाह दे दी कि वे सिक्खों के नौवें गुरु जी के पास जाएँ। वे बहुत कृपालु और दयालु हैं, आपकी मदद ज़रूर करेंगे। इस लिए कश्मीरी पंडितों का प्रतिनिधि मंडल आनन्दपुर साहिब में गुरु जी को आ कर मिला और अपने दुःख की सारी व्यथा कह सुनाई।

गुरु साहिब गहरी सोच में डूब गए। उनके सामने अब यह प्रश्न था कि यदि वे उनकी समस्या का हल नहीं करेंगे तो ये सभी मुसलमान बन जायेंगे। शेष हिन्दू धर्म तो पहले ही गहरी खाई में गिरा हुआ है। वे भी इनकी तरह अपने धर्म को त्यागने में कोई संकोच नहीं करेंगे। इस लिए गुरु जी ने सोच कर कहा,"भाई लोगो यह संकट तब ही टल सकता है यदि इसका विरोध किया जाए, इसका मुकाबला किया जाए या कोई महापुरुष इस ज़ुल्म के विरुद्ध आवाज़ उठाए और अपने शीश की बलि देने से भी न घबराए।"





साहिबज़ादा गोबिंद राए भी उस समय अपने गुरदेव पिता जी के पास बैठे थे। उस समय उनकी आयु नौ वर्ष के करीब थी। वे कश्मीरी पंडितों की दुःख भरी कहानी और अपने गुरदेव पिता जी का उत्तर भी सुन चुके थे। सब कुछ सुन कर वे बोले, "आप से बढ़ कर और कौन महापुरुष हो सकता है।"

गुरु तेग़ बहादुर जी चाहे अपने आप को बहुत बड़ा महापुरुष नहीं समझते थे, लेकिन अपने पुत्र की बात सुन कर वे प्रसन्न हो गए। उन्होंने कश्मीरी पंडितों को कहा, "जाओ सूबे को कह दो अगर औरंगज़ेब गुरु तेग़ बहादुर जी को धर्म बदलने के लिए सहमत कर सकता है तो वह सब अपना धर्म बदल लेंगे और खुशी खुशी इस्लाम कबूल कर लेंगे।"

कश्मीरी पंडित खुश हो गए। गुरु साहिब के आगे माथा टेक कर वे चले गए। लेकिन आनन्दपुर साहिब में जो आनन्द का प्रवाह चल रहा था उसमें विघन पड़ गया। गुरु साहिब जी ने उसी समय ही दिल्ली पहुंचने की तैयारी शुरू कर दी। कुछ दिनों के बाद ही अपने चुने हुए सिक्खों को साथ लेकर वे दिल्ली की तरफ चल पड़े।

श्री गुरु तेग़ बहादुर जी की शहीदी

गुरु तेग़ बहादुर जी मालवे देश में से होते हुए सिक्खी का प्रचार करते दिल्ली की तरफ चल पड़े। औरंगजेब ने कश्मीर के गवर्नर की रिर्पोट पढ़ते ही गुरु साहिब को कैद करने के लिए हुक्म दे दिया, सिपाही जब कैद करने आनन्दपुर साहिब आए तो उनको पता चला कि गुरु जी पहले ही दिल्ली की तरफ चले गए हैं। गुरु साहिब के पहले चलने का वास्तविक कारण यह था कि किसी तरह पहले औरंगज़ेब से मिलकर बात की जाए और उसको ऐसा ज़ुल्म करने से रोका जाए। परन्तु औरंगज़ेब उस समय दिल्ली में नहीं था। वह उस समय रावलपिंडी की तरफ पठानों को शोधने गया हुआ था।

गुरु जी प्रचार करते करते जब आगरे पहुंचे तो वहां साथियों समेत कैद कर लिए गए और उनको दिल्ली लाया गया। दिल्ली में उनको बहुत यातनाएं दी गई कि इस्लाम कबूल कर लें। परन्तु उनके न मानने पर उनके सामने भाई मती दास जी को आरे से चीर कर और भाई दयाला जी को उबलती देग में बिठा कर शहीद कर दिया गया। भाई सती दास के शरीर के चारों ओर रुई बांध कर उनको जीवित जला दिया गया, लेकिन गुरु तेग़ बहादर जी पर इन



घटनाओं का कोई प्रभाव न पड़ा। वे जरा भी न डोले। उन्होंने हाकमों को यही कहा, "आपने जो कुछ करना है करो, मैं अपना धर्म बदलने के लिए तैयार नहीं।"

जब गुरु जी किसी भी तरह न माने तो उनको उसी स्थान पर जहां गुरुद्वारा शीशगंज है, ला कर शीश धड़ से अलग करके शहीद कर दिया गया।



शीश और धड़ का संस्कार

जब गुरु तेग बहादुर जी को चाँदनी चौक में शहीद किया गया और उनका शीश और धड़ अलग अलग पड़े थे तो उस समय हाकमों ने चारों ओर पहरा लगा दिया तांकि कोई भी सिक्ख धड़ या शीश को उठा न सके। कई सिक्ख यह घटना देख कर अत्यन्त दुःखी हुए परन्तु इतने पहरे में शीश को उठाने

का किसी को मौका नहीं लग रहा था परन्तु जब कुछ भीड़ कम हुई तो अचानक हवा की तरह भाई जैता और भाई दुलो शीश उठा कर इस तरह आलोप हो गए कि किसी सिपाही को आवाज़ लगाने का भी मौका न दिया, कुछ समय बाद जब उन्होंने शीश न देखा तो चारों तरफ सिपाही दौड़ाए। उस समय तक भाई जैता और दुलो दिल्ली से निकल चुके थे। दो दिन और दो रात सफ़र करते वे कीरतपुर साहिब पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने सारा समाचार आनन्दपुर साहिब भेजा। अगले दिन जब वे शीश लेकर आनन्दपुर साहिब पहुंचे तो बाला गुरु, भाता जी और सिक्ख संगत आगे बढ़ कर शीश लेने आई। भाई जैता जी ने शीश बाला गुरु जी की झोली में डाला। बाला प्रीतम बड़े दृढ़ और अडोल रहे, उन्होंने भाई जैता और भाई दुलो को शाबाशी दी और उनकी दलेरी की सराहना की। गुरु साहिब के शीश का आनन्दपुर में संस्कार कर दिया गया। आज कल यहां गुरुद्वारा शीशगंज है।

गुरु साहिब के धड़ को एक लुबाना सिक्ख लखी शाह बड़ी होशियारी के साथ कपास के गड्डे में रखकर ले गया और अपने घर में ही कर चिता सजा कर अपने घर को आग लगा दी। इस तरह गुरु साहिब के धड़ का संस्कार भी कर दिया गया। इस स्थान पर आज कल गुरुद्वारा रकाबगंज है।



आनंदपुर साहिब

आनंदपुर साहिब

पटना से वापिस आ कर बाला प्रीतम आनंदपुर साहिब पहुँच गए। गुरु जी ने अपना बचपन और जवानी इसी शहर में व्यतीत किए थे। इसी शहर में ही खालसा पंथ तैयार किया गया था। इस लिए इस शहर का बाला प्रीतम जी के जीवन से बहुत गहरा सम्बन्ध है। इस शहर के बानी गुरु तेग़ बहादुर जी थे। मुगलों के अत्याचार और ज़ुल्मों के कारण गुरु ज़ी यह समझते थे कि मैदानी इलाके में सिक्खी का प्रचार करना कठिन हो गया था। इसलिए गुरु हरिगोबिन्द साहिब ने भी कीरतपुर में आकर निवास कर लिया था।

गुरु तेग़ बहादुर जी ने कीरतपुर के पास ही सतलुज नदी के किनारे नैना देवी के पहाड़ों के पास माखोवाल के गाँव की ज़मीन खरीद ली थी। उन्होंने इस नगर को सम्वत् १७२३ तथा सन् १६६६ ई. में आबाद किया। आज कल यह शहर रोपड़ जिले की एक तहसील और उपमंडल है।

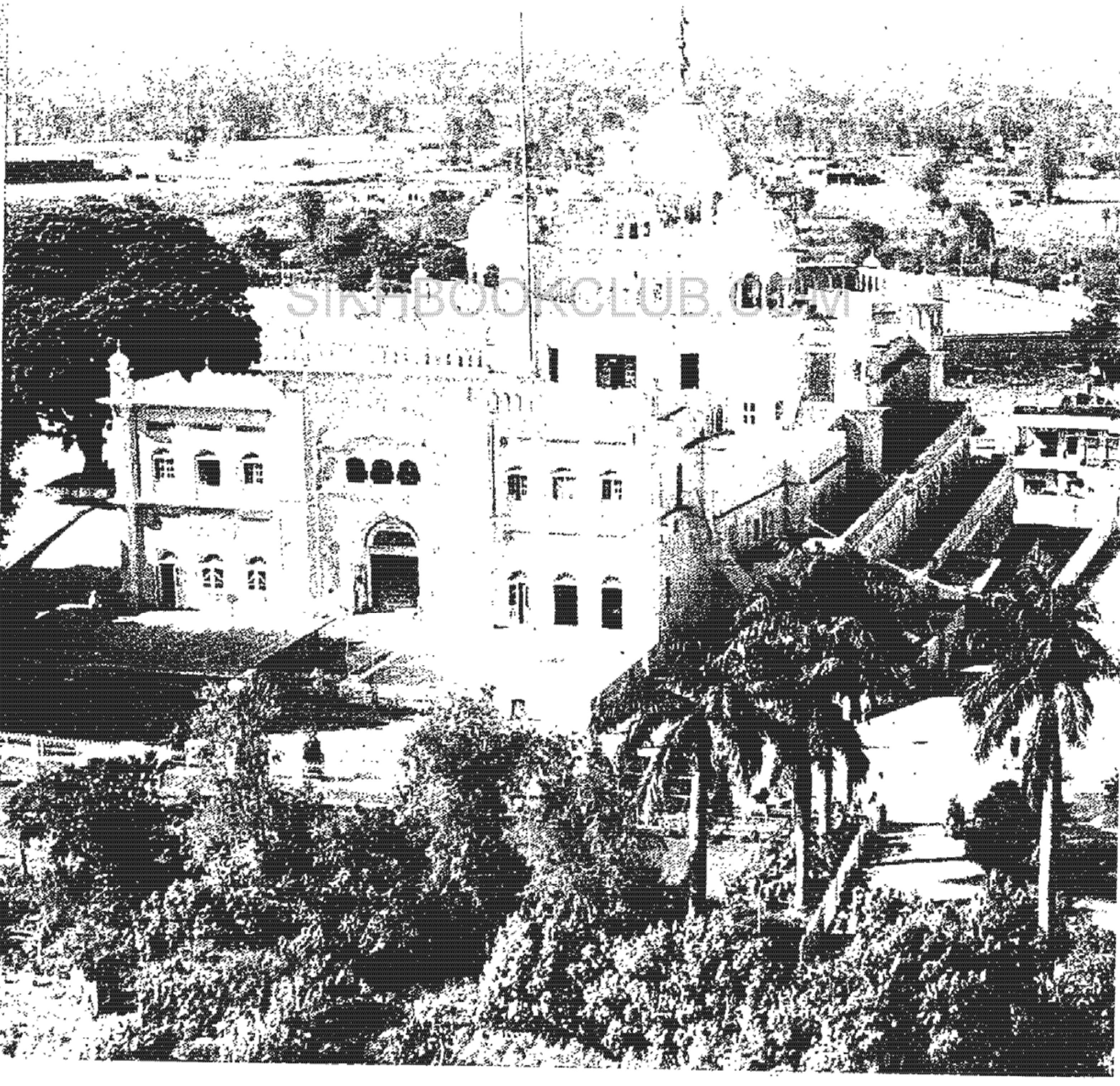
इस नगर को आबाद करते समय गुरु तेग़ बहादुर जी ने कहा कि इस नगर के वासी न किसी से डरेंगे और न किसी को भयभीत करेंगे। गुरु गोबिंद सिंघ जी ने इस शहर को बाद में बहुत रौनकें बख्शी और यह नगर खालसा वासियों का नगर कहलाया गया। सन् १६८९ ई. में गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने इस शहर की रक्षा के लिए पांच किले बनवाए। इन किलों के नाम हैं - आनन्दगढ़, लोहगढ़, फतहगढ़, केसगढ़ और होलगढ़।

सन् १६९९ ई. में तख्त केसगढ़ पर खालसा पंथ की सिरजना पाँच प्यारों के रूप में की गई। दशमेश पिता ने यहां दसम ग्रंथ की सिरजना की जिस में १७१९५ छंत, १६ प्रमुख रचनाएं और १४२८ पृष्ठ हैं। दसम ग्रंथ का साहित्य सम्पूर्ण गुरु गोबिन्द सिंघ जी की देन है।

आनन्दपुर साहिब साहित्य का एक अनोखा केन्द्र था। दूर-दूर से साहित्यकार और कवि गुरु की शोभा सुन कर आते थे और गुरु साहिब की सरप्रस्ती में साहित्य की रचना करते थे। सन् १६८९ ई. से सन् १६९९ ई. तक आनंदपुर साहिब साहित्य जगत का रौशन-ए-चिराग बना रहा। गुरु

साहिब साहित्यकारों का बहुत आदर करते थे। वो उनको केवल आदर ही नहीं देते थे बल्कि उत्साह भी प्रदान करते और उनकी आर्थिक सहायता भी करते थे। कई इतिहासकार लिखते हैं कि आनंदपुर साहिब स्थित गुरु दरबार में ५२ कवि और ३६ लेखक लगातार साहित्यक रचनाओं की रचना करते रहते थे और चार लेखक गुरु साहिब की रचनाओं को सुन्दर लिखाई में लिखते रहते थे।

इस तरह आनंदपुर साहिब की पवित्र धरती का ज़र्रा ज़र्रा गुरु साहिब के चरण स्पर्श कर तथा उनके सर्वव्यापी संदेश को अपने में छुपाए बैठा है।



गुरु गद्दी

गुरु गोबिंद सिंघ जी ११ नवम्बर सन् १६७५ ई. को आनंदपुर साहिब में गुरु गद्दी पर विराजमान हुए। बाबा बुढ्ढा जी के वंश में से बाबा राम कौर जी ने हीरे मोतियों से जड़ी दस्तार पेश करके कलगी सजाई। मोतियों की माला, तीर कमान, कृपाण, घोड़ा, बाज़ और पाँच मोहरें पेश कीं। उस के पश्चात् दूर दूर से आई संगत ने बहुमूल्य भेटें भेंट कीं। गुरुयाई केसिंहासन पर विराजमान हुए गुरु जी बहुत सज रहे थे। सारी संगत चाव और खुशी से भरी पड़ी थी। रागी सिंघ गुरुबाणी का मनोहर कीर्तन कर रहे थे।

बाद में गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने स्वयं गुरु वंश के सब बड़े लोगों को जैसे बाबा राम कौर जी, बाबा गुरदित्ता जी और श्रदालुओं को सरोपे दिए।

औरंगजेब ने बेशक सिक्खों पर बहुत सख्ती की हुई थी, इस के बावजूद भी लाखों की गिनती में श्रद्धालु आनंदपुर साहिब पहुँच गए। बताया जाता है कि पचास हज़ार रुपये का उस दिन कड़ाह प्रशाद बांटा गया और गुरु का लंगर दिन के बारह बजे से लेकर रात के बारह बजे तक चलता रहा।

गुरु गद्दी पर बैठते ही गुरु जी ने अनुभव किया कि अब ज़ुल्म के सामने सिर झुकाने का समय निकल गया है। इस ज़ुल्म और अत्याचार का अब डट कर मुकाबला करना पड़ेगा।

जब दिल्ली में अत्याचारियों ने गुरु तेग़ बहादुर जी को शहीद किया था तो कोई भी सूरवीर उनका शीश और धड़ उठाने को तैयार नहीं हुआ था। जो अपने आप को कट्टर सिक्ख बताते थे वे भी सिक्ख होने से इन्कार करने लगे।

गुरु साहिब ने अब यह सोचा कि एक ऐसी कौम तैयार की जाए जो ज़ुल्म का खुशी से मुकाबला करे और कुर्बानी देने से कभी भी पीछे न हटे। उन्होंने यह भी विचार बनाया कि सिक्खों का ऐसा रूप बना दिया जाए कि वो लाखों में खड़े हों तो भी उनकी पहचान दूर से हो जाए।

गुरु गद्दी पर बैठते ही गुरु साहिब ने सभी ओर देखा कि अब उनको क्या करना चाहिए। जिस काम के लिए वो इस संसार में आए थे उस काम को सम्पूर्ण करने के लिए अभी से ही उपाय करने होंगे। इस लिए उन्होंने तीनों कामों की तरफ ध्यान देना शुरु किया। सब से पहले उन्होंने अपना मन, धन और तन पढ़ाई में लगा दिया। उन्होंने फारसी, संस्कृत, बृजभाषा और पंजाबी की पढ़ाई

में निपुणता प्राप्त की। दूसरा काम अपनी फौजी ताकत को बढ़ाने के लिए फौज में भर्ती आरम्भ कर दी। बड़े बड़े सूरवीर उनके पास आने लगे। तीसरा काम था सैनिक शिक्षा का - इसलिए उन्होंने शिक्षित योद्धाओं को सिखलाई पर लगा दिया। इस प्रकार आनंदपुर में दिन-प्रतिदिन रौनकें बढ़ने लगीं।



भाई दुलचा

मुलतान में गुरु तेग बहादुर जी का एक सिक्ख रहता था, जो बहुत अमीर था। उसको लोग रूपा सेठ कहते थे। मुलतान में एक डाकू रहता था जिस का नाम भी रूपा था। एक बार रूपा डाकू ने डाका डाला, कोतवाल को जब पता चला कि डाका रूपे ने डाला है तब उस रूपा डाकू को पकड़ने की जगह रूपा सेठ को पकड़ लिया गया। रूपा सेठ गुरु का सिक्ख था। उसने सच्चे दिल से सतिगुरु के आगे अरदास की कि किसी तरह उस की इज्ज़त रह जाए। अगले दिन ही उसकी प्रार्थना सुन ली गई क्योंकि साथ वाले गाँव के एक कोतवाल ने उस कोतवाल के पास संदेश भेजा कि असली रूपा डाकू पकड़ा गया है और चोरी का माल भी पकड़ा गया है, इस लिए रूपा सेठ को छोड़ दिया जाए। उस समय रूपा सेठ को छोड़ दिया गया और उसकी इज़्ज़त भी रह गई।

जब उसको पता चला कि गुरु गोबिन्द सिंघ जी गुरु गद्दी पर विराजमान हो रहे हैं और दूर दूर से सिक्ख संगत उनके लिए भेटें लेकर जा रही है तब उसका भी मन हुआ कि वो बढ़िया भेंट गुरु जी के लिए लेकर जाए। उसने बहुत सारे सुन्दर हीरे मोतियों के हार बनवाए और गुरु साहिब के माप की दो जड़ाऊ कंगनों की जोड़ी बनवाई।

लेकिन कुछ मजबूरी हो जाने के कारण जब वो आनन्दपुर न जा सका तब उसने वो भेटें वहां के मसंद भाई दुलचे के हाथ भेज दीं।

भाई दुलचे का मन बेईमान हो गया, उसने जड़ाऊ कंगनों की जोड़ी अपनी पगड़ी में छुपा कर रख ली और हीरे मोतियों का हार गुरु साहिब को भेंट कर दिया। लेकिन गुरु जी तो अन्तर्यामी थे। उनको दुलचे की चालाकी का पता चल गया। अगले दिन जब दरबार लगा और गुरु जी तख्त पर आ कर विराजमान हुए तो उन्होंने कहा कि भाई दुलचा कहां है, वो तुरन्त मेरे सामने हाज़र हो। दुलचा तुरन्त उठ कर गुरु जी के पास पहुंच गया।

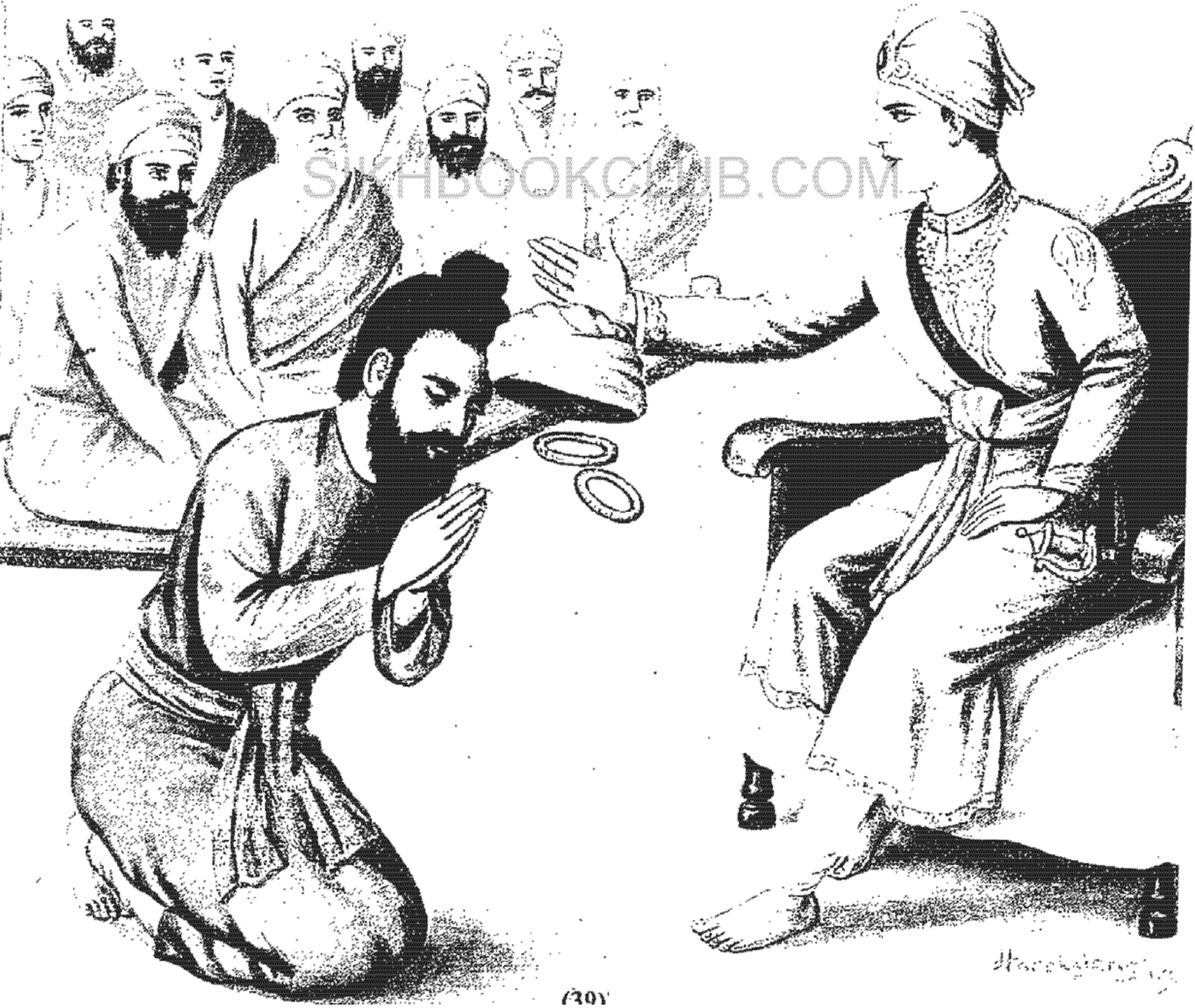
गुरु जी ने उसको कहा, "भाई दुलचा आप मेरे लिए कौन सी भेंट लेकर आए हो ?" भाई दुलचे ने कहा, "महाराज! मैं तो जो कुछ लाया था, कल आप जी के आगे भेंट कर चुका हूं।"

गुरु जी ने फिर कहा, "भाई दुलचा अच्छी तरह याद कर लो, कोई चीज रह तो नहीं गई, किसी प्रेमी ने सौगात भेजी हो और आप भेंट करना भूल गए हों।"

दुलचा गुरु साहिब की यह बात सुन कर बड़े जोश में आ गया, वो कहने लगा, "आप मेरे साथ बालकों जैसा बर्ताव कर रहे हैं, मैं पिछले पचास सालों से गुरु घर की सेवा कर रहा हूं और आप मेरे पर शक कर रहे हो और भरे दरबार में मेरी इज़्ज़त पर हाथ डाल रहे हो।"

गुरु जी मुस्कराए और कहने लगे, ज़रा मेरे नज़दीक आओ। जब भाई दुलचा उन के पास गया तब गुरु जी ने जोर से हाथ मार कर दुलचे की पगड़ी उतार दी और कहने लगे,"पहले तो मैंने तुझे कुछ नहीं कहा था, इज़्ज़त को हाथ अब डाला है।"

सारी संगत हैरान रह गई कि गुरु जी भी गुस्से में आ सकते हैं। परन्तु उनकी हैरानी और बढ़ गई जब सोने के जड़ाऊ कंगनों की जोड़ी बाहर गिर



पड़ी और एक सिक्ख ने उठा कर गुरु साहिब को दे दी। गुरु साहिब ने कहा, "भाई दुलचा, अब बताओ, आपकी इज़्ज़त में क्या छुपा हुआ था। जिस गुरु के प्यारे ने बड़े चाव से यह कंगन भेजे थें वो भला पुरुष क्या सोचता होगा ?"

भाई दुलचा बहुत शरमिंदा हुआ और गुरु जी के चरणों में पगड़ी रख कर मिन्नतें करने लगा, "महाराज, मुझे क्षमा कर दें, मैंने तो आपको छोटा बालक ही समझा था, आप तो सतिगुरु अर्न्तयामी हो, आप परमेश्वर हो। मेरे ऊपर कृपा करो और मेरी भूल बख्श दो।"

गुरु जी ने कहा, "भाई दुलचे, गुरु के घर में देने के लिए कोई कमी नहीं है, जा तुझे क्षमा किया, लेकिन आगे से ऐसी हेरा फेरी न करना"। दुलचा बहुत खुश हुआ और उस का और सारी संगत का गुरु साहिब पर दृढ़ विश्वास और आदर सत्कार बढ़ गया।

काबुली तम्बू

उस समय शामियाने और तम्बू बनाने में अफगानिस्तान का शहर काबुल बहुत प्रसिद्ध था। बादशाह औरंगजेब ने एक बहुत बढ़िया और सुंदर तम्बू मंगवाया, जिस को देखने के लिए कई लोग तरसते थे। उस के ऊपर सोने और चांदी के तिल्ले से कई प्रकार के बेल बूटे, पक्षी, जानवर और दृश्य बनाए गए थे। जब दिल्ली के सिक्खों ने उस तम्बू को देखा तो उन्होंने भी काबुल के सिक्खों को लिखा कि वो एक बढ़िया तम्बू गुरु जी के लिए बना कर भेजें।

काबुल में एक बहुत अमीर आदमी रहता था, जिस का नाम दुनी चंद था। जब दुनी चंद ने तम्बू बनाना आरम्भ किया तब वहां के दो और सिक्खों ने उस की सहायता की और तम्बू में इतनी बढ़िया चित्रकारी की कि वो बादशाह के तम्बू से कई गुणा बढ़िया बना था। यह आकार में भी इतना बड़ा था कि इस में गुरु साहिब का दरबार भी लग सकता था। बताया जाता है कि उस समय दुनी चंद ने इस तम्बू पर ढाई लाख रुपये खर्च किए थे। आज के हिसाब से तो यह खर्च करोड़ों से भी ऊपर बनता है।

सन् १६८० ई. में वैसाखी के समय काबुल, कंधार, गजनी आदि देशों और अपने देश से बहुत संगत गुरु के दर्शनों को आई। वो अपने साथ बहुत सौगातें ले कर आए। इन सौगातों में काबुली तम्बू, ईरानी कालीन, दरियां, गलीचे और चादरें शामिल थीं।

जब राजा रतन चंद परिवार सहित आनंदपुर साहिब आए तब उनको इस काबुली तम्बू में ठहराया गया। इस तम्बू का आलौकिक रूप देख कर राजा रतन [illegible] रह गया। वो समझता था कि वो एक रियासत का राजा है और उस [illegible] की कोई कमी नहीं लेकिन इस शाही तम्बू को देख कर वो अपने [illegible] सा अनुभव करने लगा।



राजा रतन राए

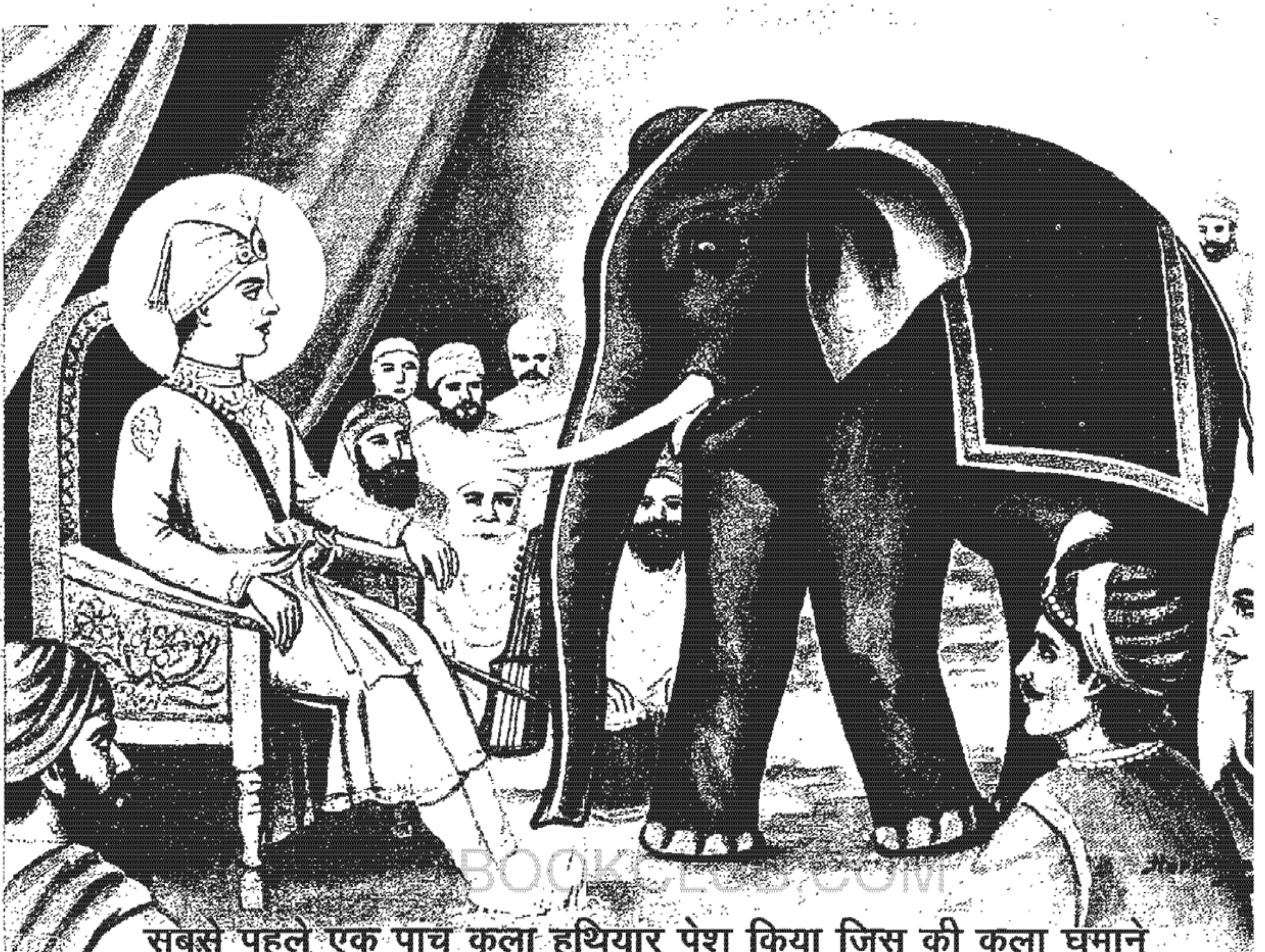
उस समय आसाम एक बड़ी रियासत थी। वहां के राजा का नाम राजा राम राए था। राजा राम राए के पास बहुत धन दौलत और आदर मान था लेकिन उनके घर प्रभु ने सन्तान का सुख नहीं दिया था। पटना से जब गुरु तेग़ बहादुर जी आसाम गए तो राजा राम राए ने गुरु साहिब को बहुत प्यार से बुलाया। उनका दिल से सत्कार किया और अपने मन की बात कह दी। राजा राम राए ने कहा, "महाराज मेरी यह बादशाही किस काम की, जब इसका वारिस ही नहीं है। रानी बहुत उदास रहती है और मेरा मन भी राज काज में नहीं लग रहा है। आप सब गुणों के मालिक हैं। मुझे एक पुत्र प्रदान करो। गुरु तेग़ बहादुर जी मुस्कराए और कहने लगे, "यह आपका भ्रम है, देने वाला तो वो एक प्रभु है और देकर किसी पर अपना एहसान नहीं जताता। उसके घर कोई कमी नहीं, एक प्रभु के नाम का सिमरन करो, सब कुछ तुम्हें मिल जाएगा।"

प्रभु की कृपा से उनके घर एक साल के पश्चात् पुत्र पैदा हुआ। जिसका नाम उन्होंने रतन राए रखा। राजकुमार ने अभी बचपन की दहलीज भी पार नहीं की थी कि राजा स्वर्गवास हो गया। लेकिन वो रानी को अपनी अन्तिम इच्छा बता गए कि राजकुमार को गुरु सिक्ख बनाना।

जब रतन राए बारह साल के हुए तो उन्होंने गुरु के दर्शन करने की इच्छा व्यक्त की। रानी ने उनकी बात मान ली और चलने की तैयारियां आरंभ हो गईं।

राजा ने अपने सेवकों को कहा कि बढ़िया और अनोखी भेटें तैयार की जाएं। जब सब कुछ ठीक हो गया तो चलने की तैयारियां की गईं।

बहुत लम्बा सफर तय करके राजा रतन राए अपनी माता और दूसरे अहलकारों सहित दीवाली के मौके पर आनंदपुर साहिब पहुंचे। गुरु जी ने उनको काबुली तम्बू में ठहरा दिया। अगले दिन राजा सब भेटें ले कर दरबार में हाज़र हुए। उन्होंने बड़े प्यार और श्रद्धा से माथा टेका और गुरु जी ने उनको आशीर्वाद देकर अपने पास बिठा लिया। फिर अन्य सेवकों ने तोहफे भेंट किए।



सबसे पहले एक पाच कला हथियार पेश किया जिस की कला घुमाने से बरछा, गुर्ज, कृपाण, पिस्तौल और बंदूक पांच अलग-अलग हथियार बन जाते थे। फिर चार पुतलियों वाली चंदन की चौकी मंगवाई गई। इस चौकी की विचित्रता यह थी कि इस की कला दबाने से चौपड़ की खेल निकलती थी और पुतलियां खेलने बैठ जाती थीं, एक और कला दबाने से यह बैठने के लिए एक तख्त बन जाता था। इसके बाद युद्ध से संबंधित और भी सामान भेंट किया गया। इसके उपरान्त पांच अनोखे और फुर्तीले घोड़े भी भेंट किए जिनके कार्य देखने योग्य थे और एक हाथी भी भेंट किया जिसको प्रसादी हाथी कहते थे। यह हाथी बहुत समझदार था। वो गुरु साहिब के जूते भी साफ करता था, डालने के लिए जूते पैरों के आगे ला कर रख देता था। सूंड में पानी भर कर पैर भी साफ कर देता था। अगर गुरु साहिब तीर चलाते थे तो यह हाथी तीर वापिस पकड़ लाता था। रात के समय यह हाथी मशाल सूंड में पकड़ कर अगवाई करता था। इस हाथी की सूंड से लेकर माथे तक, और कमर के ऊपर से होती हुई पूंछ तक एक दूध जैसी सफेद रेखा थी।

बाद में वो राजा गुरु जी का सिक्ख बन गया और गुरु जी ने उसको नाम की दात बख्शी। वो गुरु साहिब का हमउम्र था, इस लिए दोनों इकट्ठे शिकार खेलने जाते थे। राजा को गुरु की संगत में बहुत आनंद प्राप्त होता था और अपने देश को वापिस जाने के लिए उनका दिल नहीं मानता था। वो पांच महीने आनंदपुर में ठहर कर वापिस अपने देश चला गया।

रणजीत नगारा

गुरु जी ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि ज़ुल्म का सामना तलवार से ही करना है। इस लिए उन्होंने बाकायदा फौज रखने का फैसला कर लिया। पंजाब से हज़ारों की गिनती में सूरवीर उनकी सेना में शामिल हो रहे थे।

गुरु जी ने यह विचार किया कि सेना के लिए एक अच्छे नगारे की ज़रूरत है। नगारे के बिना सेना की शान नहीं बनती। नगारे की आवाज़ दूर दूर तक दुश्मन के दिल को हिला देती है और इस पर भिन्न भिन्न प्रकार से बजाए गए नगारे की थाप कई प्रकार के संकेत भी समझा देती है। जब दुश्मन चढ़ाई करने आ जाए तो नगारा बजाने से सब को पता चल जाता है और सैनिक झटपट तैयार हो जाते हैं। जब लड़ाई में विजय प्राप्त हो रही हो तो एक तरफ नगारा बजाने से दूसरी फौज को पता चल जाता है और वो भी जोश से लड़ते हैं।

गुरु जी ने अपने वजीर दीवान चंद को एक बड़ा नगारा बनवाने का हुक्म दिया। लेकिन मसंद, जो खाली बैठे रहने के आदी हो चुके थे, नगारा बनाने के सुझाव पर बहुत घबराए। वो समझते थे कि नगारा बजाने से पड़ौसी राजा नाराज़ हो जाएंगे और हो सकता है कि बादशाह औरंगजेब भी इसको बुरा समझे।

इस लिए उन्होंने मिलकर माता गुजरी के आगे प्रार्थना की कि गुरु साहिब को नगारा तैयार करवाने से रोका जाए। माता जी को उन्होंने अच्छी तरह समझाया कि नगारा बजाने से भयानक लड़ाईयों का सामना करना पड़ सकता है।

माता जी ने मसंदों की बात मान ली और गुरु जी के आने पर उन्हें कहा, "हम संत मत का प्रचार कर रहे हैं, संतो साधुओं को फौज रखने की क्या ज़रूरत है और युद्ध हमने किसके लिए करना है ?"

माता जी की बात सुनकर गुरु जी ने बेनती की, "मेरा धर्म और मेरे बड़े बुजुर्गों का धर्म अब मेरे को चेतावनी देकर कह रहा है कि अब ज़ुल्म को रोकने के लिए शस्त्र धारण करने ही पड़ेंगे। मुझे सच्चे वाहिगुरु का हुक्म है कि संतों और गरीबों की मदद करनी है और अत्याचारियों का मुंह तोड़ना है। मैंने ऐसे सूरवीरों की कौम पैदा करनी है जिन के हाथों में तलवार होगी तथा मुंह में वाहिगुरु का नाम होगा।

माता जी गुरु साहिब की दृढ़ता को देखकर चुप रह गए और गुरु जी ने एक सुन्दर नगारा तैयार करवाया। इस नगारे का नाम रणजीत नगारा रखा गया। यह नगारा जब बजता था तो कोसों तक इसकी आवाज़ जाती थी। शिकार खलते समय गुरु जी इस नगारे को साथ लेकर जाते थे।



राजा मेदनी प्रकाश

सिरमौर का राजा मेदनी प्रकाश था। उस का श्रीनगर के राजा फतेहचंद के साथ काफी समय से वैर चला आ रहा था। असल में दुश्मनी का कारण यह था कि श्रीनगर के राजा ने मेदनी प्रकाश का क्षेत्र ज़बरदस्ती अपने अधीन किया हुआ था। रिद्धियों सिद्धियों का मालिक गुरु हरि राए जी का बड़ा सुपुत्र बाबा राम राए, राजा फतेह चंद के पास ही रह रहा था। इस लिए राजा मेदनी प्रकाश डरता था कि राजा फतेह चंद उसकी सारी रियासत पर कब्जा न कर ले और उसको जान से ही न मार दे। उसके डरने का एक और भी कारण था, राज फतेह चंद की लड़की राजा भीम चंद के लड़के साथ ब्याही जाने वाली थी। इस कारण राजा फतेहचंद की ताकत में और भी बढ़ावा हो जाना था।

जब से रणजीत नगारा तैयार हुआ था, राजा भीम चंद गुरु साहिब से इर्ष्या रखता था। वो गुरु साहिब को अपनी प्रजा में से समझता था और अपने लड़के की शादी के लिए उसने गुरु साहिब से प्रसादी हाथी की मांग की थी जिस को गुरु साहिब ने देने से इन्कार कर दिया था।

राजा मेदनी प्रकाश को उसके वजीरों ने यह सलाह दी कि अगर वो अपने राज्य को बचाना चाहते हैं तो वो गुरु गोबिन्द राए जी को अपने पास बुला लें। वो समझते थे कि गुरु जी के सामने बाबा राम राए की कोई करामात नहीं चल सकती और गुरु जी की ताकत सारे राजाओं से भारी है। उनके पीछे सारे पंजाब और दूसरे प्रान्तों के सिक्ख जान बलिदान करने को तैयार थे।

मेदनी प्रकाश ने एक अकलमन्द वजीर को गुरु जी के पास आनन्दपुर भेजा, उस वजीर ने गुरु जी के पास प्रार्थना की, "महाराज, हमारे देश में प्राकृतिक दृश्य दिल को मोह लेने वाले हैं, शिकार बेअंत है और आपके श्रद्धालु राजा मेदनी प्रकाश और उनका परिवार आपके दर्शन करने के लिए बेताब हैं, इस लिए उन पर कृपा करो।"

गुरु जी शिकार के बहुत शौकीन थे, उस मनमोहक इलाके में जाने के लिए

उनको कोई एतराज नहीं था। उन्होंने अपने वजीर नंद चन्द, मामा कृपा चंद, माता गुजरी जी और दूसरे वजीरों के साथ सलाह की और नाहन जाने की तैयारियां कर दीं। नाहन पहुंचने पर राजा मेदनी प्रकाश ने उनका बहुत स्वागत किया।

गुरु जी ने नाहन पहुंच कर पहला काम यह किया कि राजा मेदनी प्रकाश और राजा फतेह चंद की सुलह करवा दी और राजा फतेह चंद ने राजा मेदनी प्रकाश का जो इलाका जबरदस्ती जब्त कर लिया था, उसे वापिस कर दिया। राजा मेदनी प्रकाश इस बात से बहुत प्रभावित हुए। उसने गुरु जी के पास बेनती की कि वो उस के इलाके में रह कर ही लोगों को निहाल करें।



पाऊँटा साहेब

गुरु जी ने मेदनी प्रकाश की बेनती को मान कर नाहन रियासत में ठहरना मान लिया। गुरु जी ने अपने निवास के लिए जमुना नदी के किनारे पर एक रमणीक स्थान का चुनाव किया। वहां उस समय एक पुराना नगर बसता था, जिसका नाम पाऊँटा था। उन्होंने इस नगर को सुन्दर बनाने का विचार बनाया। जमुना नदी जब पहाड़ों में बल खाती हुई मैदानी इलाके में आ निकलती है तो एक सुंदर नजारा पेश करती है। इस रमणीक स्थान पर राजा की सहायता से गुरु साहिब ने पत्थरों के एक पक्के किले का निर्माण किया और उसमें रिहायशी मकान भी बनवाए। जिस स्थान पर गुरु साहिब का निवास था, वहां आजकल गुरुद्वारा पाऊँटा साहिब है।

जब गुरु घर के श्रद्धालुओं को पता चला कि गुरु जी पाऊँटा साहिब चले गए हैं तो वो हज़ारों की गिनती में वहां पहुंचने लगे। आनंदपुर साहिब की तरह ही यहां कीर्तन का प्रवाह और नाम दान प्रदान होने लगा। जिन कवियों, राग विद्या के माहिरों को पाऊँटा साहिब के बारे में पता चला वो भी यहाँ आ कर ठहरे।

साहित्य के भंडार यहां रचे जाने लगे। साहित्य और संगीत के साथ साथ शस्त्र विद्या की ओर भी पूरा ध्यान दिया जाने लगा। सेना की भर्ती फिर से आरम्भ हो गई। शिकार खेलने के लिए यहां पर खुले इलाके पड़े थे। गुरु साहिब अपने साथियों सहित शिकार का आनन्द लेते।

आज जब हम पाऊंटा साहिब के दर्शन करते हैं तो हमारा सीस आदर से झुक जाता है कि गुरु साहिब ने कितने सुन्दर स्थान का चुनाव किया था। बहुत नीचे नीले आकाश जैसी जमुना नदी जिस को गुरु साहिब कालंद्री कहते हैं, पत्थरों, चटानों से खेलती हुई बहती चली जा रही है। जमुना नदी के किनारे एक बहुत बड़ी चट्टान है। यह चट्टान सफेद पत्थर की बनी हुई है। यह चट्टान इतनी बड़ी है कि इस के ऊपर एक बहुत विशाल शहर बसाया जा सकता है।

यहां पाऊंटा साहिब में ही जमुना नदी के किनारे बैठ कर गुरु साहिब ने बीर रस कावि की रचना की, इस वाणी को पढ़ कर गीदड़ भी शेर बन गए। यहां ही उनके पास बावन कवि रहते थे जिनको गुरु साहिब तनख्वाह से अतिरिक्त सिरोपे और उपहार भी देते थे। यहां चार लेखक दिन रात उनकी वाणी को बहुत सुन्दर लिखाई में लिखते रहते थे जो कि उनकी वाणी ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंच सके।

यहां ही जमुना नदी के किनारे बैठ कर गुरु साहिब प्रभु से एक हो जाते थे। यहां प्रभु में लीन ही वह इलाही वाणी की रचना करते थे। जापु साहिब और अकाल उसतति जैसी वाणी उन्होंने यहां कुदरत की गोद में बैठ कर रची।

पाऊँटा साहिब का ज़र्रा-ज़र्रा गुरु साहिब के चरण स्पर्श से धन्य हुआ है। यहां यदि कवि, विद्वान और लेखक रहते थे तो साथ ही हज़ारों की गिनती में सिक्ख सेना भी बढ़ रही थी। पाऊँटा साहिब की धरती को यह भी मान प्राप्त है कि यहां रहते ही गुरु साहिब ने भंगाणी के युद्ध में सारे पहाड़ी राजाओं को इकट्ठी फौज को हराया और उनके मन में यह बात पक्की बिठा दी कि गुरु साहिब को कोई जीत नहीं सकता।



सफेद शेर का शिकार

पाऊँटा साहिब में रह कर गुरु जी रोज़ शाम को घने जंगलों में शिकार को जाया करते थे। वहां वह भयानक और खतरनाक जानवरों का शिकार करते थे। इन जानवरों में चीते, बाघ, आदमखोर शेर और फसलों का उजाड़ा करने वाले जंगली सुअर हुआ करते थे।

जब गुरु जी ने राजा फतेह चंद और मेदनी प्रकाश की आपस में रज़ामन्दी करवाई थी तो वो भी गुरु साहिब के साथ शिकार खेलने का आनंद प्राप्त करने के लिए काफी समय पाऊँटा साहिब में ठहरे थे।

एक दिन किसी व्यक्ति ने गुरु जी के पास आकर संदेश दिया कि जंगल में एक बड़ा खतरनाक शेर आया है जो जानवरों और मानवों का बहुत नुकसान करता है। डर के कारण कोई घर से बाहर निकलने को तैयार नहीं और जो पशुओं को जंगल में चरने के लिए छोड़ा जाता है, वह उनको मार कर खा जाता है।

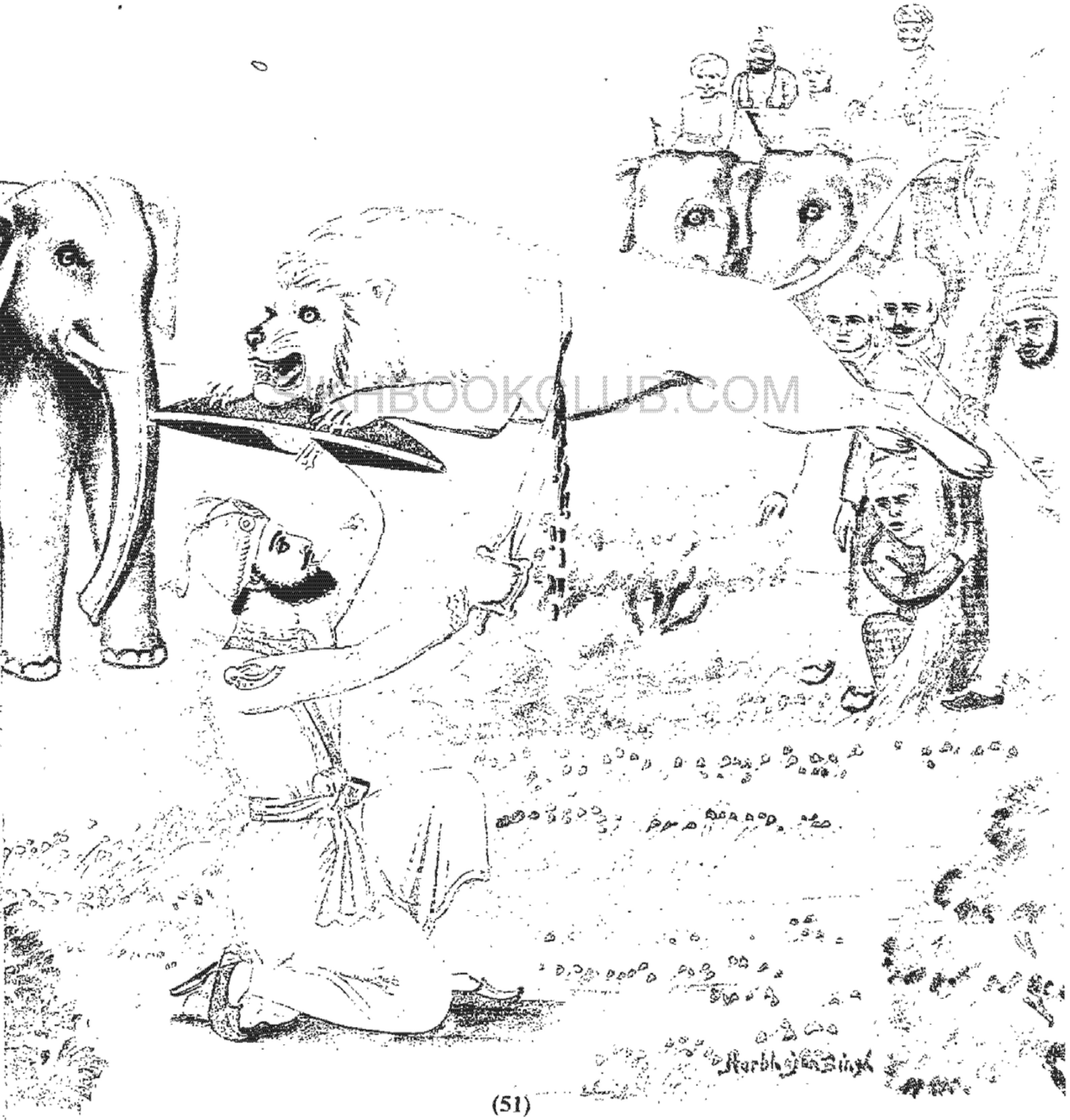
गुरु जी यह बात सुनकर बड़े रोष में आ गए और वे राजा मेदनी प्रकाश और राजा फतेह चंद को साथ ले कर शेर के शिकार के लिए चल पड़े। वो सब हाथियों पर चढ़ कर गए और बाकी घोड़ सवार सूरवीर उन्होंने साथ ले लिए। उस आदमी के बताए अनुसार वो उसके साथ साथ चल पड़े। जब बहुत घने जंगलों में चले गए तो उन्होंने एक वृक्ष के नीचे एक बहुत बड़े कद के सफेद रंग के शेर को सोते पाया। सारे वहां जा कर रुक गए। गुरु जी ने राजाओं को कहा कि आप में से कोई है, जो इस शेर को ललकार कर तलवार से मारे। लेकिन कोई भी राजे इस बात से सहमत नहीं हुए। सभी कहने लगे कि ऐसे भयानक जानवर को इस तरह मारना ठीक नहीं। यह सोया पड़ा है, गोलियां मार कर इसको यहीं पर ही खत्म कर देना चाहिए। गुरु जी ने कहा, "देखो, निशस्त्र पर वार करना और सोए हुए दुश्मन को मारना बुज़दिली है, यह कोई बहादुरी वाला करनामा नहीं है।"

यह कह कर वो हाथी से नीचे उतरे और नंगी तलवार लेकर वो शेर के सामने आ गए और उसको ललकारा। शेर सावधान हो गया और उठ कर गुरु जी की तरफ देखने लगा। गुरु जी ने फिर उसको ललकारा, लेकिन फिर भी वह गुरु जी की तरफ देखता निश्चल बैठा रहा।

सभी राजा शेर की भयानक आँखों को देखकर अपने हाथियों को पीछे ले गए। लेकिन गुरु जी ने फ़िर ज़ोर से ललकारा। शेर ने जोश में आ कर

पूरी ताकत के साथ गुरु जी के ऊपर छलांग लगाई। उन्होंने उसके अगले दोनों पंजों को अपने बाएं हाथ में पकड़ी ढाल के साथ रोक दिया और दाएं हाथ से तलवार का वार कर शेर के दो टुकड़े कर दिए।

सब लोग यह दृश्य देख कर दंग रह गए। सब यह कहने लगे कि गुरु जी स्वयं भगवान का रूप हैं, इस लिए यह काम वो ही कर सकते थे। आम दुनियावी मानव के बस की यह बात नहीं है।



पीर बुद्धु शाह

सय्यद बुद्धु शाह सढौरे के रहने वाले थे। वो खुले ख्यालों के सूफ़ी फ़कीर थे और उनके सामने हिन्दू, मुसलमान बराबर थे। उनके पास एक बहुत बड़ी जागीर थी और हज़ारों ही शिष्य उनकी सेवा में हाज़र रहते थे। जागीर की आमदन से वो हर समय हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए खुले लंगर लगा कर रखते थे।

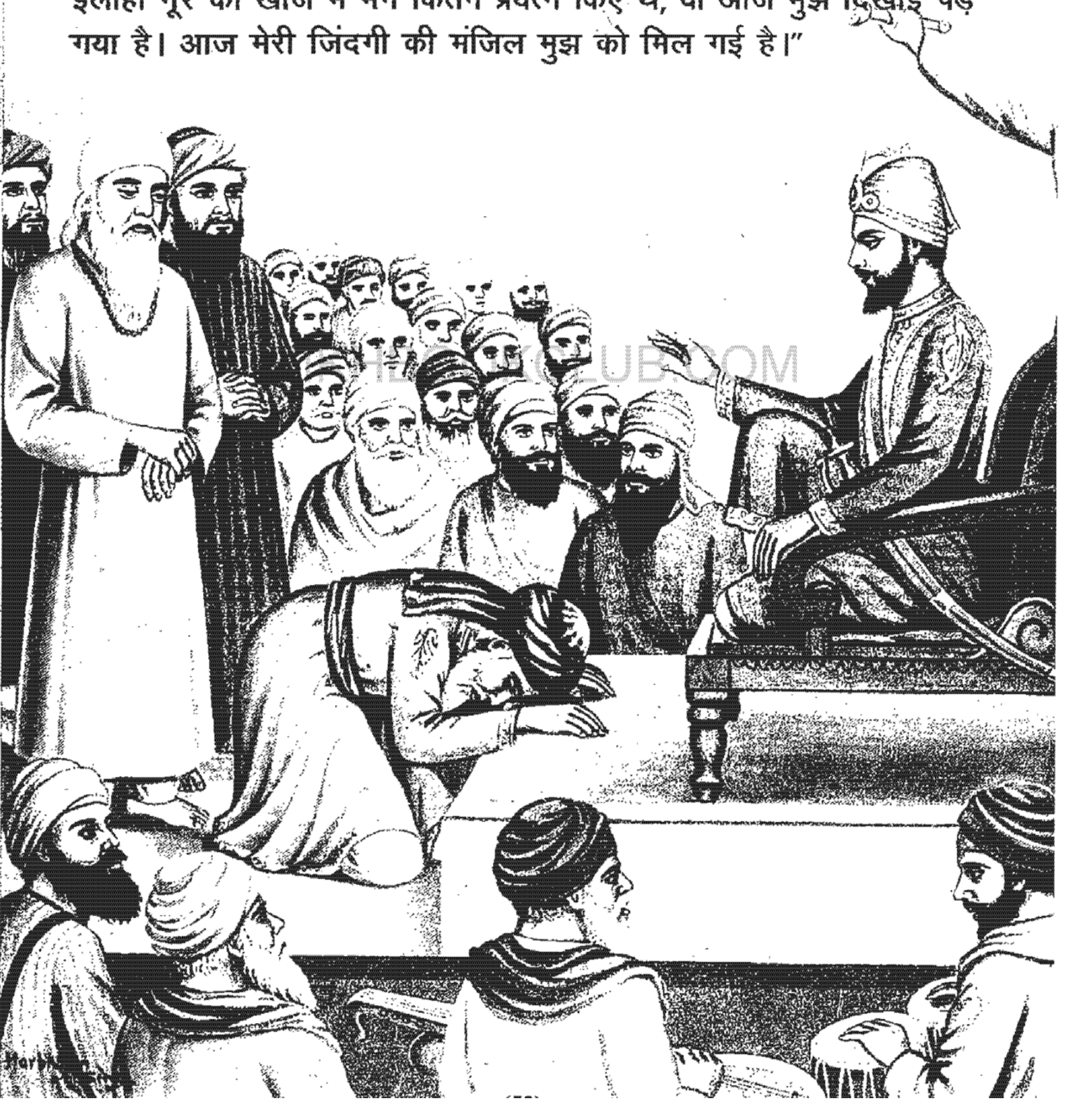
वो गुरु नानक देव जी के बहुत श्रद्धालु थे और जब उनको यह पता चला कि गुरु नानक साहिब की गद्दी पर विराजमान गुरु गोबिन्द राए जी पाऊँटा साहिब में आ गए हैं तो उनके मन में यह प्रबल इच्छा पैदा हुई कि गुरु साहिब के दर्शन किए जाएं। पाऊँटा साहिब उनके नगर सढौरा से केवल सोलह मील के फासले पर ही था। इस लिए गुरु साहिब को मिलने का यह अच्छा मौका था।

सय्यद जी अपने सैकड़ों शिष्यों को ले कर गुरु जी के दरबार में पहुँचे, उस समय दरबार लगा हुआ था और इलाही कीर्तन का प्रवाह चल रहा था। सय्यद साहिब जब गुरु जी के सामने आये तो उनका गुरु जी के आगे सीस झुकाने का हौंसला न हुआ। जिस व्यक्ति के सामने रोज़ सैकड़ों लोग सीस झुकाते थे, भला वो किसी और के आगे किस तरह सीस झुका सकता था ?

गुरु जी ने जब उनको देखा तो उनके मन की उलझन को समझ लिया। उन्होंने उसको अपने पास बुलाया और आदर सहित बैठने के लिए कहा। उनका हाल चाल पूछा और उसकी आँखों से आँखें मिला कर मुस्करा पड़े। पीर जी भी गुरु जी को देख कर बहुत खुश हुए और उन्होंने गुरु जी को कहा, "मेरे मन में हर समय यह ख्याल घूमता रहता है कि अल्लाह से मिलाप किस तरह होगा।" गुरु जी ने फुरमाया, "अल्लाह तो ज़र्रे ज़र्रे में बसता है, हर मनुष्य के अंदर बसता है, लेकिन हम अपनी छोटी सी दुनिया में ही गुम हो जाते हैं। अज्ञानता के कारण हम "मेरी मेरी" में फँस जाते हैं और अहंकार का शिकार हो जाते हैं। जब हम अपने अंदर अल्लाह के बारे में उत्पन्न हुए अंहकार की दीवार को गिरा देते हैं तो हम खुद अल्लाह का रूप हो जाते हैं, भाव है कि हम अल्लाह को पा लेते हैं। यदि एक ओर माया के मोह में फँसे रहें तो दूसरी तरफ चाहे शरीर को कष्ट देने वाली कितनी ही घोर तपस्या करें, फिर भी हम अल्लाह से दूर ही रहते हैं। हमारा दिल अल्लाह से मिलने को नहीं करता, बल्कि उससे अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने की मांग करते रहते हैं। हम धन दौलत, पुत्र, रुतबे और चौधर माँगते हैं, लेकिन

जब हमारे मन में सब इच्छाएं समाप्त हो जाती हैं, हमारे मन में सब अहंकार लुप्त हो जाता है और हम "मेरी मेरी" के स्थान पर "तेरा तेरा" करते हैं तो अल्लाह के साथ हमारा मिलाप हो जाता है।"

गुरु जी के यह शब्द सुन कर, पीर जी के अंदर जो अहंकार की दीवार थी, वो गिर पड़ी। जो अपने आप को बहुत ऊँचा समझते थे, वो हीनभाव से गिर गए। वो उठ कर गुरु साहिब के चरणों में गिर पड़े और कहने लगे, "जिस इलाही नूर की खोज में मैंने कितने प्रयत्न किए थे, वो आज मुझे दिखाई पड़ गया है। आज मेरी जिंदगी की मंजिल मुझ को मिल गई है।"



भँगाणी का युद्ध

गुरु साहिब किसी के साथ भी वैर विरोध नहीं रखते थे। वो जात पात में विश्वास नहीं रखते थे और हर व्यक्ति को नाम दान प्रदान करते थे। एक साधारण व्यक्ति से लेकर राजा महाराजाओं तक उनके श्रद्धालु थे। लेकिन पहाड़ी राजा उनकी इस नीति से बहुत दुखी थे। राजा भीम चंद तो उनको अपना दुश्मन समझता था और वो चाहता था कि गुरु जी को पहाड़ों में से निकाल दिया जाए या पकड़ कर औरंगज़ेब के हवाले किया जाए। बेशक गुरु साहिब आनंदपुर छोड़ कर पाऊँटा साहिब चले गए थे, लेकिन उन्होंने राजा मेदनी शाह और फतेह चंद की सुलह करवा दी थी, राजा भीम चंद के लड़के की राजा फतेह चंद की लड़की के साथ सगाई हुई थी। विवाह के समय जब सारे राजा इकट्ठे हुए तो उन्होंने यह सलाह की कि विवाह से पहले तो लड़ाई करनी उचित नहीं लेकिन विवाह के पश्चात् उचित समय पर सारे मिल कर लड़ाई करेंगे। भीम चंद एक बड़ी फौज लेकर अपने लड़के की शादी करने के लिए चल पड़ा।



लेकिन फतेह चंद की रियासत को जो सीधा रास्ता जाता था वो पाऊँटा साहिब में से निकलता था। उन्होंने गुरु जी से रास्ता माँगा लेकिन गुरु जी पहाड़ी राजाओं की नीति को समझते थे। उन्होंने दुल्हा और पुरोहित को तो रास्ता दे दिया लेकिन बारात को लम्बे रास्ते से जाने को कहा। भीम चंद और उसके साथी राजा इस बात से बहुत नाराज़ हुए और शादी के पश्चात् उन्होंने गुरु साहिब पर हमला करने की पूरी योजना बना ली।

गुरु साहिब ने पीर बुद्धु शाह के कहे अनुसार पाँच सौ पठान अपनी फौज में नौकर रखे थे। जब उन्होंने पहाड़ी राजाओं के साथ लड़ाई के बारे में सुना तो वो लालच में आ कर पहाड़ी राजाओं के साथ मिल गए। गुरु जी के पास पाँच सौ उदासी भी रहते थे, जब उनको लड़ाई के बारे में पता चला, तो वो भी रातो रात डेरा छोड़ कर भाग गए।



लेकिन गुरु साहिब चढ़ती कला में थे और वो इस बात से नहीं घबराए। उन्होंने सात आठ मील दूर भँगाणी गाँव के नज़दीक पहाड़ियों से टक्कर लेने की योजना बनाई। वो नहीं चाहते थे कि पाऊँटा साहिब का कुछ भी नुकसान हो, इस लिए जहाँ से जमुना पार करके पहाड़ी राजाओं ने हमला करना था, उन्होंने उस स्थान पर ही डेरा डाल दिया। उन्होंने एक उँचे स्थान का चुनाव किया जहाँ से दुश्मन की फौज तीर और गोली की मार केनीचे आ सकती थी।

पीर बुद्धु शाह को भी जब यह पता चला कि उसके रखवाये हुए पठान धोखा दे गए हैं तो वो भी अपने चारों बेटों और लगभग पाँच सौ मुरीदों को ले कर मैदान-ए-जंग में पहुँच गए। जैसे उम्मीद थी, भीम चंद ने अपने राजाओं और पठानों की फौज़ ले कर, गुरु साहिब की फौज़ पर हमला कर दिया। घमासान युद्ध हुआ और गुरु साहिब के योद्धाओं ने पहाड़ियों के पैर वहाँ टिकने नहीं दिए। पहाड़ी राजे और पठान यह समझते थे कि गुरु जी के पास छोटी जाति के लोग थे वो क्या लड़ाई करेंगे। लेकिन जिस व्यक्ति ने शस्त्र हाथ में कभी पकड़ा न हो, उन्होंने भी बड़े बड़े जरनैलों के छक्के छुड़ा दिए। महंत किरपाल ने अपने (डंडे) मुदगर के साथ ही जरनैल हय्यात खाँ का सिर कुचल कर रख दिया। गुरु साहिब ने आगे बढ़ रहे राजाओं को अपने तीर का निशाना बनाया। राजा हरी चंद ने गुरु जी पर तीन वार किए परन्तु गुरु जी का वो कुछ भी न बिगाड़ सके, गुरु जी ने एक ही तीर खींच कर चलाया और राजा हरी चंद को यमलोक पहुँचा दिया। पहाड़ियों ने जब यह देखा कि उनके अधिकारी मारे गए हैं तो वो दुम दबा कर भागना चाह रहे थे। गुरु जी की फौज उनका पीछा करना चाहती थी, परन्तु गुरु साहिब ने उनको रोक दिया।

इस लड़ाई में गुरु साहिब के भी कई जरनैल शहीद हुए पर इस जीत ने सिक्ख फौज के हौंसले बुलँद कर दिए और पहाड़ी राजाओं को भी अपनी ताकत का ज्ञान हो गया।

नादौण का युद्ध

भँगाणी का युद्ध जीत कर गुरु जी आनंदपुर साहिब आ गए। यहाँ पर आ कर उन्होंने कई किले तैयार करवाए और अपने विश्वसनीय सिक्खों को फ़ौजी सिखलाई देनी आरंभ कर दी। पहाड़ी राजा अब डरते थे और आनंदपुर साहिब पर हमला करने का किसी का हौसला नहीं था।

उन दिनों में ही जम्मू के हाकिम मियाँ खां को दिल्ली से यह आदेश हुआ कि वो पहाड़ी राजाओं से चंदा इकट्ठा करके भेजे। पहाड़ी राजाओं ने कई वर्षों से चंदा देना बंद कर दिया था। हाकिम मियाँ खां ने इस काम के लिए फ़ौजदार आलिफ खां की डयूटी लगाई। आलिफ खां एक भारी फ़ौज ले कर नादौण पहुँच गया। यहाँ आ कर उसने भीम चंद और दूसरे राजाओं को संदेश भेजे कि या तो चंदा दें या लड़ाई के लिए तैयार हो जाएं। राजा पहले तो डरते हुए चंदा देने को तैयार हो गये परन्तु उन में से किसी ने सलाह दी कि इस विषय में गुरु साहिब से पूछ लिया जाए।



गुरु जी ने उनको यह सलाह दी कि वो चंदा न दें और लड़ाई के लिए तैयार हो जाएं। इस से संबंधित गुरु जी ने उनकी हर तरह की सहायता करने का वायदा भी किया। गुरु जी की सहायता से सारे राजा आलिफ खां पर टूट पड़े और घमासान युद्ध हुआ। आलिफ खां के जब बड़े बड़े शूरवीर मारे गए तो वो जान बचा कर भाग गया।

पहाड़ी राजा इस जीत पर बहुत खुश हुए। यह जीत भी असल में गुरु जी की ही जीत थी। गुरु साहिब ने उनको समझाया कि अगर वो इकट्ठे हो कर रहेंगे तो वो भारी से भारी फ़ौज को भी हरा सकते हैं।

विवाह

सिक्ख इतिहास के अनुसार गुरु जी के तीन विवाह हुए बताए जाते हैं। उनका पहला विवाह लाहौर निवासी श्री हरिजस राए की पुत्री माता जीतो के साथ २३ आषाढ़, संवत् १७३४ में हुआ। माता जीतो जी एक गुरमुख सिक्ख परिवार की लड़की थी और बड़े सहज स्वभाव की मालकिन थी।

विवाह संबंधी हरिजस राए ने यह बेनती की कि विवाह लाहौर में किया जाए, परन्तु उन दिनों में वर्षा बहुत होने के कारण लाहौर जाना कठिन था। गुरु जी ने उनको कहा कि वो सारा सामान ले कर यहाँ आ जाएं, यहाँ पास ही लाहौर बसा दिया जाएगा।

गुरु जी ने सारी संगतों को हुक्मनामे भेज दिये कि वो गुरु के लाहौर पहुँचें और उस स्थान की शान में बढ़ावा करें। इस लिए बहुत भारी संगत खुशी और जोश के साथ वहाँ पहुँची और गुरु के लाहौर में दुकानें लग गईं और बाज़ार सज गए।

श्री हरिजस राए परिवार सहित वहाँ पहुँच गए। हज़ारों सिक्ख सेवकों की उपस्थिति में बड़ी धूम धाम से विवाह हुआ। इस नई बसी जगह पर गुरु जी ने बरछा मार कर ज़मीन में से पानी का झरना निकाला था। आनंदपुर साहिब से नंगल की तरफ इस स्थान को अभी तक भी लोग गुरु का लाहौर कहते हैं और आनंदपुर साहिब के दर्शन करने गए श्रद्धालु इस स्थान के भी दर्शन करते हैं।

गुरु जी का दूसरा विवाह श्री राम शरन खत्री की सुपुत्री माता सुंदरी के साथ ७ वैशाख, संवत् १७४१ को हुआ। यह विवाह आनंदपुर साहिब में ही हुआ बताया जाता है। इस बारे कोई गवाही नहीं मिलती है कि गुरु जी विवाह करवाने लाहौर गए थे। कई इतिहासकार तो यह भी लिखते हैं कि माता जीतो और माता सुन्दरी एक ही थे। माता जी का मायके का नाम जीतो था और गुरु जी ने अपनी तरफ से उनका नाम सुन्दरी जी रख दिया।



गुरु जी का तीसरा विवाह जिला जेहलम के गाँव रुहतास के वासी भाई रामू खत्री की सुपुत्री माता साहिब देवी के साथ १८ वैशाख, संवत् १७५७ को हुआ। परन्तु इतिहासकार इस विवाह को असल विवाह नहीं मानते। वो लिखते हैं कि संवत् १७५७ की वैशाखी के समय भाई रामू जी अपनी जवान सुपुत्री माता साहिब देवी को भी पालकी में बिठा कर साथ ले कर आए। उन्होंने गुरु जी के पास बेनती की कि इस सुपुत्री का इस के जन्म से ही आपके साथ नाता जोड़ा है। अब इस को सारे माता जी ही कहते हैं और इस के साथ अब अन्य कोई भी सिक्ख विवाह नहीं करवा सकता। इसलिए इस पर कृपा करो और इस को अपने चरणों की दासी बना लो। गुरु जी ने इन्कार तो किया लेकिन भाई साहिब का धैर्य देखकर उन्होंने साहिब देवी को अपनी पत्नी बनाना कबूल कर लिया और साथ में यह भी कह दिया कि अब यह खालसे की माता जी कहलाएंगी। माता साहिब देवी अमृत ग्रहण कर माता साहिब कौर बन गईं।

संतान

साहिबज़ादा अजीत सिंघ

गुरु गोबिन्द सिंघ जी के चार साहिबज़ादे थे। बड़े साहिबज़ादे का नाम बाबा अजीत सिंघ था। आप माता सुंदर कौर जी के गर्भ से २२ वैशाख, संवत् १७४३ विक्रमी को पाऊँटा साहिब में पैदा हुए थे। बताते हैं कि जब गुरु जी भँगाणी का युद्ध जीत कर पाऊँटा साहिब वापिस आए थे तो उस समय साहिबज़ादे का जन्म हुआ था। जीत की खुशी में गुरु साहिब ने बच्चे का नाम अजीत रखा, जो बाद में अमृत छक कर अजीत सिंघ हो गया।

आप बड़े शूरवीर, बलवान और अत्यन्त शक्ति के मालिक थे, आप हर प्रकार के हथियार चला सकते थे और बड़े से बड़े योद्धा का मुकाबला कर सकते थे। आनंदपुर साहिब के जितने भी युद्ध हुए, आप ने उनमें बढ़ चढ़ कर भाग लिया।

चमकौर साहिब के युद्ध समय साहिबज़ादा अजीत सिंघ की उम्र लगभग १९ साल थी। गुरु गोबिन्द सिंघ जी पाँच पाँच सिक्खों का जत्था बना कर दुश्मनों के साथ लड़ने के लिए बाहर भेज रहे थे। जब वो पाँच शहीद हो

जाते थे तो वो और पाँच को भेज देते थे। इस दृश्य को देखकर बाबा अजीत सिंघ का दिल भी बेकाबू हो गया। उन्होंने गुरु पिता के पास बेनती की "पिता जी मेरे ऊपर कृपा करो" और मुझे युद्ध में जाने की आज्ञा दो। आप ने मेरा नाम अजीत रखा है, मुझे कोई भी जीत नहीं सकेगा। मैं खुशकिस्मत हूँगा अगर मैं आप के आदर्शों के लिए लड़ता हुआ जान कुर्बान कर दूंगा। गुरु जी अपने शूरवीर सुपुत्र की हिम्मत को देखकर इन्कार न कर सके और उन्होंने अपने सुपुत्र का आखिरी बार माथा चूमा, आखिरी बार उसको गले लगाया और युद्ध में जाने की आज्ञा दे दी।

साहिबजादे ने अपने पिता भाई और साथी सिक्खों को फतह बुलाई और जय-घोष बुलाते रणभूमि में पहुँच गए। पहले उन्होंने तीरों की वर्षा की और दुश्मनों में भागदौड़ मचा दी, लेकिन जब उनके तीर समाप्त हो गए तो उन्होंने हाथों में नेज़े पकड़ लिए। साहिबज़ादा भी नेज़ा पकड़ कर दुश्मनों पर टूट पड़ा। उन्होंने एक मुसलमान की छाती में नेज़ा मारा जो उसके लोहे के कवच को चीर कर उसकी अंतड़ियों में धँस गया, और कवच में फँस कर वहीं टूट गया। साहिबज़ादे ने फिर तलवार पकड़ ली और दुश्मनों पर जैकारे बोलते हुए टूट पड़े। लेकिन पाँच छः लोग हज़ारों लोगों के आगे क्या कर सकते थे, एक एक कर के सारे शहीद हो गए।

गुरु जी अपने बेटे की बहादुरी देख कर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने सच्चे पातिशाह प्रभु का धन्यवाद किया कि उनके बेटे का जीवन धर्म हेतु कुर्बान हो गया।

साहिबज़ादा जुझार सिंघ

दूसरे साहिबज़ादे बाबा जुझार सिंघ थे। आप माता अजीत कौर के गृह १४ आश्विन् संवत, १७४७ (१६९० ई.) को पैदा हुए। आप भी अपने बड़े भाई की तरह बहुत शूरवीर और हर प्रकार की शस्त्र विद्या में निपुण थे। आप ने भी आनंदपुर साहिब की सारी लड़ाईयों में भाग लिया और तीर तलवार के अनोखे ज़ौहर दिखलाते रहे।

चमकौर साहिब की लड़ाई में जब बाबा अजीत सिंघ दुश्मन की सेना का मुकाबला करते शहीद हो गए तो साहिबज़ादा जुझार सिंघ दशमेश पिता के आगे हाथ जोड़ कर खड़े हो गए। वो कहने लगे, "पिता जी बेशक मेरी उम्र

छोटी है पर आपका सुपुत्र होने के कारण और अमृत छकने के कारण मैं दुश्मन के किसी भी योद्धा से कम नहीं। मुझे आज्ञा दो, मैं पीछे नहीं हटूंगा। दुश्मन को ललकार कर, लताड़ कर, शहीदी जाम पी कर अपने भाई के पास पहुँच जाऊँगा।"

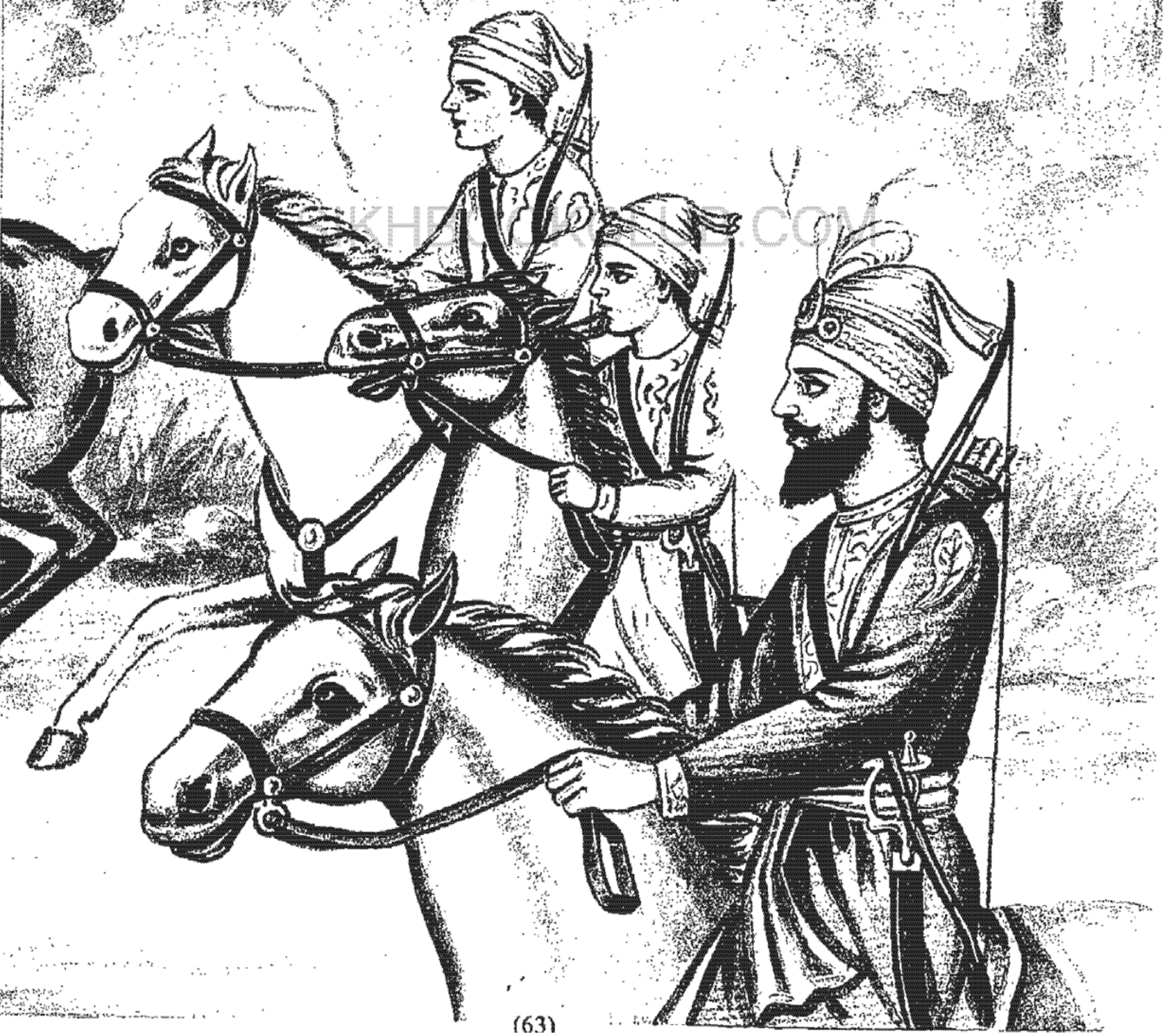
गुरु जी ने बड़े गौरव और मान के साथ अपने सुपुत्र को गोद में लिया, नई पोशाक पहनाई, फिर सिर पर कलगी सजाई और सुन्दर दूल्हे की तरह सजा कर मौत रूपी दुल्हन के साथ शादी रचाने के लिए मैदान-ए-जंग में भेज दिया।



साहिबज़ादा जोरावर सिंघ

तीसरे साहिबज़ादे बाबा जोरावर सिंघ १२ श्रावण, संवत् १७५३ विक्रमी (१६९६ ई.) को माता अजीत कौर के गर्भ से पैदा हुए। आप छोटी उम्र से ही लड़ाईयों में पलने के कारण कई प्रकार के शस्त्र चलाना सीख गए थे। आप जी की दादी माता गुजरी जी आप के साथ बहुत प्यार करती थीं और आप को सिक्ख शूरवीरों की कहानियाँ सुनाती रहती थीं।

जब गुरु साहिब औरंगज़ेब की झूठी कसमों पर भरोसा करके आनंदपुर साहिब के किले को खाली कर के बाहर आ गए तो मुसलमानों ने उन पर फिर हमला कर दिया। सरसा नदी के किनारे पर हुए युद्ध के पश्चात् माता गुजरी जी, छोटे दोनों साहिबज़ादे और एक सेवक उनसे बिछुड़ गए थे।



रास्ते में उनको उनका एक पुराना सेवक गंगु ब्राह्मण मिल गया। वह उन को अपने घर ले गया परन्तु माता के पास धन दौलत देखकर बेईमान हो गया और उसने तीनों को सरहिंद के सूबा के पास गिरफ्तार करवा दिया। उसने उनको किले में सम्मण बुर्ज में कैद कर दिया और अगले दिन छोटे साहिबज़ादों को नवाब की कचहरी में पेश किया गया।

साहिबज़ादों के बहुत डराया धमकाया गया कि या तो वो मुसलमान बन जाएं या मरना कबूल करें, लेकिन उन्होंने अपना धर्म त्यागना स्वीकार न किया। वो छोटे बच्चे एक ऐसे उत्तराधिकार के मालिक थे कि जिनके लिए शहीद होना कोई नई चीज़ नहीं थी।

जब साहिबज़ादे किसी भी ढंग से अपना धर्म त्यागना नहीं माने तो सम्मण बुर्ज से थोड़ी दूर किले के बीच की दीवार को गिराया गया और साहिबज़ादों को उस में खड़ा किया गया। एक तरफ़ काजी हाथ में कुरान ले कर खड़ा था और दूसरी तरफ़ जल्लाद कंधे पर तलवार रख कर खड़ा था। राजगिरों को यह आदेश दिया गया कि वो बच्चों के इर्द गिर्द तंग दीवारें खड़ी करते जाएं। जब एक घेरा समाप्त हो जाता तो काज़ी उनसे फिर पूछता कि बच्चो मान जाओ, लेकिन बच्चों का ध्यान अब अकाल पुरुष के साथ जुड़ गया था, वो कोई उत्तर नहीं दे रहे थे। आखिर में दोनों के शीश धड़ों से अलग कर दिए गए।

इस तरह छोटे दोनों भाई १३ पौष, संवत् १७६१ (२७ दिसम्बर, सन् १७०४) को शहीद हो गए। उनकी याद में सरहंद के पास गुरुद्वारा फतेहगढ़ साहिब स्थित है और आज यही शहीदी स्थान पंजाब के एक ज़िले का सदर मुकाम बन गया है।

साहिबज़ादा फ़तेह सिंघ

गुरु गोबिन्द सिंघ जी के सब से छोटे सुपुत्र साहिबज़ादा फ़तेह सिंघ जी माता अजीत कौर के घर फाल्गुन सुदी ७, संवत् १७५५ विक्रमी को पैदा हुए। आप अभी पाँच साल के छोटे बच्चे ही थे कि गुरु साहिब को आनंदपुर छोड़ना पड़ा और सरसा नदी के किनारे बाबा फतेह सिंघ अपने बड़े भाई जोरावर सिंघ और दादी माता गुजरी सहित बाकी परिवार से बिछुड़ गए। बाद में इन तीनों को गंगू ब्राह्मण ने इनाम के लालच में सूबा सरहंद के नवाब को पकड़ा दिया।

बाबा फतेह सिंघ को उनके भाई जोरावर सिंघ केसाथ ही तिथि १३ पौष, संवत् १७६१ (२७ दिसम्बर सन् १७०४) को नीवों में चिनवा कर शहीद कर दिया।

खालसे का जन्म

खालसे का जन्म

सम्वत् १७५६ की वैशाखी से काफी समय पूर्व गुरु साहिब ने सारे हिन्दुस्तान तथा अन्य काबुल कंधार देशों में यह सन्देश भेजा कि इस बार वैशाखी के अवसर पर समस्त संगत उत्सुकता पूर्वक पहुंचे। गुरु साहिब के आदेश पत्र मिलते ही सभी सिक्खों में उत्साह पैदा हो गया तथा अपने सभी काम अधुरे छोड़कर आनंदपुर साहिब पहुंचने लगे। वैशाखी से कुछ दिन पूर्व ही अत्यन्त रौनकें लग गईं तथा अटूट गुरु का लंगर वितरण होने लगा।

वैशाखी वाले दिन एक बहुत बड़ा सुन्दर तम्बू लगाया गया। गुरु साहिब के तख्त के पीछे एक छोटा लेकिन कीमती तम्बू लगाया गया। सारी सिक्ख संगत दरबार में आकर बैठ रही थी। आसा जी की वार का दिव्य कीर्तन हो रहा था। समस्त संगत की आंखें गुरु साहिब के दर्शनों के लिए उत्सुक थीं। जब आसा जी की वार सम्पूर्ण हुई तो गुरु जी उस छोटे तम्बू में से निकल कर संगत के समक्ष आए, लेकिन दर्शन करके सारी संगत चकित हो उठी। आज गुरु साहिब के चेहरे पर एक अनूठा तेज था। उनकी आंखें ज्वाला की भान्ति दहक रही थीं तथा चेहरे पर अलग ही ईश्वरीय नूर था। उनके हाथ में पकड़ी चण्डी रुपी तलवार बिजली समान चमक रही थी। अपने तख्त पर बैठने की बजाए खड़े होकर तलवार को जोश के साथ हवा में घुमाकर तथा गर्जनार्पूण स्वर में बोले - "यह भगवती सदा ही शीश मांगती है, आज इसे एक श्रद्धालु सिक्ख के शीश की आवश्यकता है, क्या आप में से कोई ऐसा सिक्ख है जो अपने गुरु को शीश भेंट कर सके?"

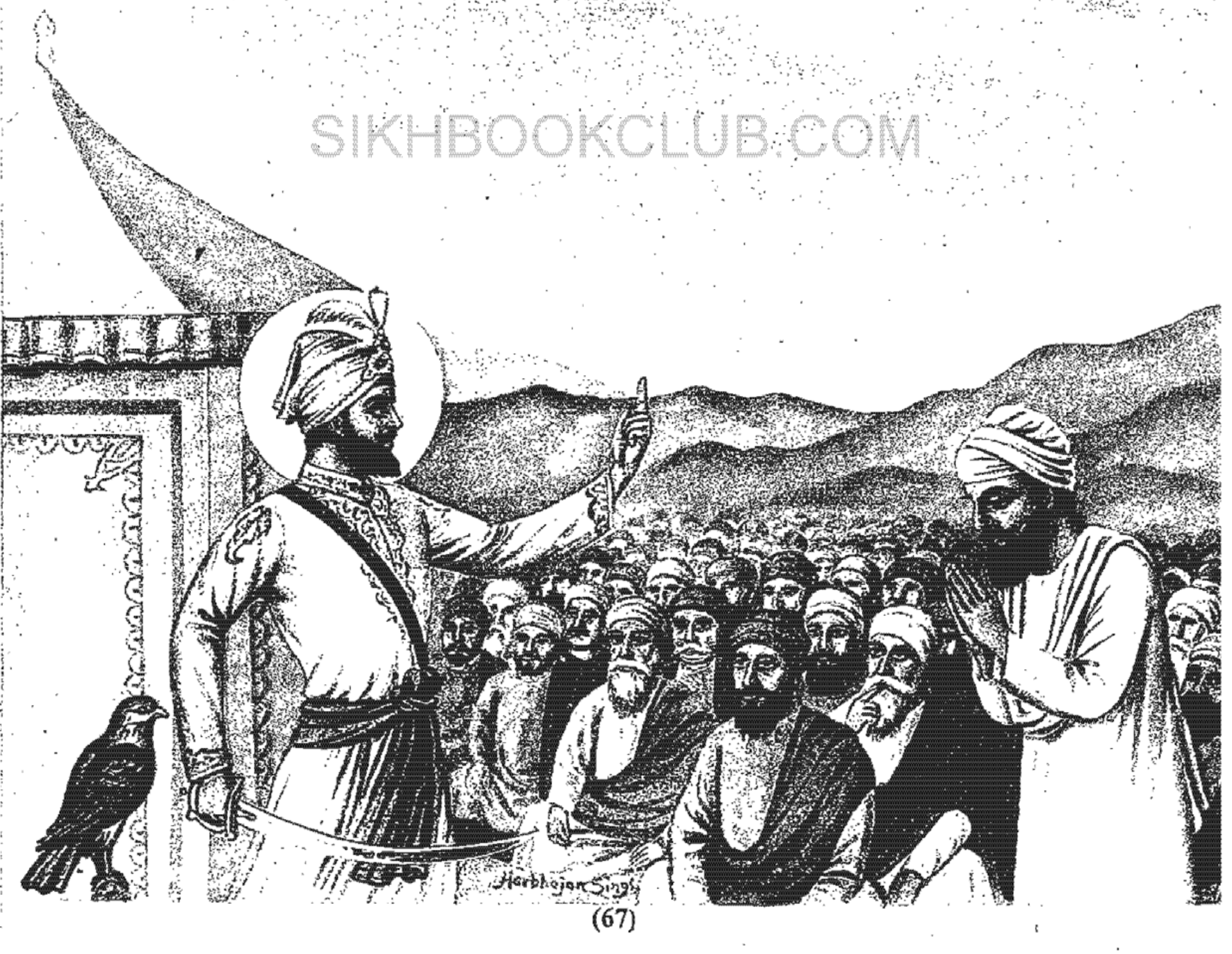
गुरु जी की यह आज्ञा सुनकर समस्त दरबार में सन्नाटा छा गया। सभी जानते थे कि गुरु जी सिक्खों के शीश की रक्षा करते हैं, लेकिन उनके द्वारा सिक्खों का शीश मांगना एक अद्भुत तथा अनहोनी बात थी।

गुरु जी फिर दहाड़कर बोले-"यह श्री साहिब किसी प्यारे सिक्ख का शीश मांग रही है, है कोई तुम में से गुरु का प्रेमी सिक्ख जो अपने गुरु के लिए शीश भेंट कर सके ?"

सभी ने चुप्पी धारण की हुई थी तथा लोग ऐसे श्वास खींचकर बैठे थे जैसे कोई शेर को देखकर श्वासहीन हो जाता है। कोई भी एक दूसरे की ओर देख तक नहीं रहा था तांकि गुरु जी उनके चेहरे पर कुछ पढ़ ही न लें।

गुरु जी तीसरी बार कहने ही वाले थे कि एक सिक्ख उठकर खड़ा हुआ तथा बेनती करने लगा - "हे सच्चे पातिशाह! मेरा यह शीश आप जी का ही है, मुझे क्षमा करना मैं आपकी आज्ञा का पालन तुरन्त न कर सका। मुझे अति प्रसन्नता होगी यदि मेरा यह निकम्मा शीश आप जी की तलवार की धार का आनन्द प्राप्त कर सकेगा।" यह सिक्ख लाहौर निवासी भाई दया राम था।

गुरु साहिब ने बड़े क्रोध में भाई दया राम को बाजू से पकड़ा और उस तम्बू में ले गए, जो उनके तख़्त के पीछे लगा हुआ था। सारी संगत ने तलवार किसी के शीश पर चलती सुनी तथा एक धड़ के ज़मीन पर गिरने की आवाज़ आई। फिर उन्होंने रक्त भी तम्बू में से बाहर निकलता देखा। सभी लोग भयभीत हुए बैठे थे कि गुरु साहिब रक्त में भीगी तलवार लिए तम्बू में से बाहर आए और तलवार घुमाते हुए फिर गरज कर बोले - "इस तलवार को एक और शीश की ज़रुरत है, आओ, कोई गुरु का सिक्ख इस तलवार की प्यास मिटाए।"



दरबार में फिर सहानुभूतिपूर्ण खामोशी छा गई, लेकिन इस बार दिल्ली से आए भाई धर्म चन्द ने अपना शीश भेंट किया।

भाई धर्म चन्द का भी वही हाल हुआ तथा गुरु जी जब तीसरी बार रक्त भीगी तलवार लहराते हुए बाहर आए तो द्वारका निवासी भाई मोहकम चन्द उठा तथा उसने अपना शीश भेंट करने के लिए प्रार्थना की।

जब चौथी बार गुरु जी वही तलवार लेकर बाहर आए तो बिदर निवासी भाई साहिब चन्द ने गुरु जी की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए अपना शीश भेंट किया।

भाई साहिब चन्द का भी वही हाल हुआ तथा गुरु साहिब फिर भव्यता में आकर कहने लगे - "इस तेग़ की अभी प्यास नहीं बुझी है, इस को एक और सिक्ख के शीश की प्यास है। उठो! कोई मां का लाल तथा गुरु की प्रसन्नता प्राप्त करो।"

अब गुरु साहिब को पुनः कहने का अवसर न मिल रहा था। तुरन्त जगन्नाथ के रहने वाले भाई हिम्मत राय उठ खड़े हुए। वह कहने लगे - "हे सच्चे पातिशाह! मुझे देर हो गई है, भूल क्षमा करना, मेरा यह निरर्थक शीश आपकी तलवार की धार को तरस रहा है। शीघ्रता से श्री भगवती की प्यास को मिटाओ।"

गुरु साहिब उसे भी तम्बू में ले गए, तलवार चलने तथा धड़ के गिरने की आवाज़ आई तथा फिर रक्त की धारा तम्बू में से बाहर आई।

बाहर बैठे फिर सभी सिक्ख इंतज़ार करने लगे कि गुरु जी नंगी तलवार लेकर बाहर निकलेंगे तथा प्रत्येक अपने आप को तैयार करने लगा कि इस बार वह गुरु साहिब को शीश भेंट कर मोह - माया के समुद्र को पार कर जाएगा। लेकिन काफी इंतज़ार के बाद भी गुरु जी बाहर न आए। सभी की दृष्टि तम्बू पर लगी थी तथा इस कौतुक को अधीरता से देख रहे थे।

काफी समय के पश्चात् गुरु जी बाहर आए, लेकिन सभी देख कर विस्मय के समुद्र में डूब गए कि इस बार गुरु जी नंगी तलवार लेकर बाहर नहीं आए थे, बल्कि उनकी तलवार म्यान में ही थी तथा उनके साथ उनके भेष समान, सुनहरी केसरी लिबास पहने, पांच अन्य सिक्ख थे। उन पांचों में भी गुरु साहिब की भान्ति तेज झलक रहा था तथा उन पांचों की निराली सुन्दरता तथा शान देखकर सारी संगत "वाहिगुरु वाहिगुरु" कह उठी।

सभी को देखने में कोई भ्रम न हुआ कि यह वही पांच सिक्ख थे, जिन्होंने

गुरु साहिब को अपना शीश भेंट किया था।

शीश भेंट करने वाले पांचों सिक्ख केसरी पहरावा पहने गुरु साहिब के तख्त के निकट आ खड़े हुए। फिर गुरु साहिब ने संगतों को उपदेश दिया तथा अपने तख्त पर बैठ गए।

उन्होंने एक सरबलोह का बाटा मंगवाया उसमें उत्तम जल डाला। बाटे के समीप बीर-आसन में बैठकर खण्डा फेरने लगे तथा साथ-साथ वाणी का पाठ भी उच्चारण करते रहे। जब वह अमृत जिस में ईश्वरीय वाणी तथा गुरु जी की आत्मिक शक्ति घुल गई तो माता साहिब देवां ने इसमें बताशे डाल दिए। जब यह बताशे भी पूर्ण रूप में घुल गए तो गुरु जी बाटा लेकर खड़े हो गए। उन पांचों प्यारों को बीर-आसन में बैठने के लिए कहा। बाटे का अमृत उन्होंने पांचों सिक्खों को छकाया तथा उस अमृत के छींटे उनकी आंखों व शरीर पर मारे। फिर उन्होंने अमृत को उनके केशों तथा जुड़े में डाला। कहा जाता है कि उस दिन से प्रत्येक सिक्ख का प्रत्येक बाल अमृत से भरपूर हो गया। इसलिए सिक्ख का प्रत्येक बाल पाक तथा पवित्र है।

पांचों सिक्खों को अमृत छका कर गुरु जी ने उन्हें आदेश दिया कि अब वह अपने हाथों से अमृत उन्हें छकाएं। पहले तो उन्होंने कुछ संकोच किया, लेकिन गुरु जी ने उन्हें कहा - "आज से तुम मेरा खास रूप हो, खालसा गुरु है तथा गुरु खालसा है। आज तुम मेरे गुरु हो तथा मैं आपका शिष्य हूँ।"

फिर उन पांचों प्यारों ने गुरु जी को अमृत छकाया। गुरु जी ने फिर कथन किया - "आज से तुम सभी शेर हो, तुम्हारी जात-पात का भेद खत्म हो गया है तथा तुम्हारी जाति खालसा है, तुम सभी 'सिंघ' हो। इसलिए आपके नामों के साथ दास, चंद, राम आदि नहीं लगेगा बल्कि प्रत्येक नाम के साथ 'सिंघ' लगेगा। इस प्रकार उन पांचों सिक्खों के नामों के साथ सिंघ लगाकर वह स्वयं भी गोबिंद राए से गुरु गोबिंद सिंघ हो गए।"

तत्पश्चात् उन पांचो प्यारों को अमृत तैयार करने के लिए कहा तथा वह अमृत शेष संगत को छकाया गया। इस प्रकार कुछ दिनों में ही लाखों सिक्ख अमृत छक कर सिंघ सज गए।

प्रत्येक सिक्ख को उन्होंने पांच ककार प्रदान किए तथा इन ककारों को हमेशा अपने साथ रखने का आदेश दिया। यह पांच ककार हैं - केश, कड़ा, कंघा, कच्छ तथा कृपाण।

पांच प्यारे

जिन पांचों सिक्खों ने गुरु जी को अपने शीश भेंट किए, गुरु जी ने उन्हें पांच प्यारे कह कर सम्मानित किया। यह पांच प्यारे भी सिक्ख धर्म के साथ ही अमर हो गए हैं। आज कहीं भी अरदास हो तो इन पांच प्यारों को अवश्य स्मरण किया जाता है। इन पांच प्यारों का नाम, चार साहिबजादों से भी पहले लिया जाता है।

यह बात देखने तथा समझने वाली है कि यह पांच प्यारे केवल पंजाब से ही सम्बन्धित नहीं थे, बल्कि भारत के अलग-अलग प्रान्तों में से आए हुए थे। यहां पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि भारत के हर कोने में गुरु के सच्चे सिक्ख उपस्थित हैं तथा गुरु साहिब समस्त हिन्दुस्तान को अपना घर मानते थे तथा सारे देश को ज़ुल्म के पन्जे से आज़ाद करवाना चाहते थे।

इन पांच प्यारों की संक्षिप्त जीवनी निम्नलिखित है -

भाई दया सिंघ

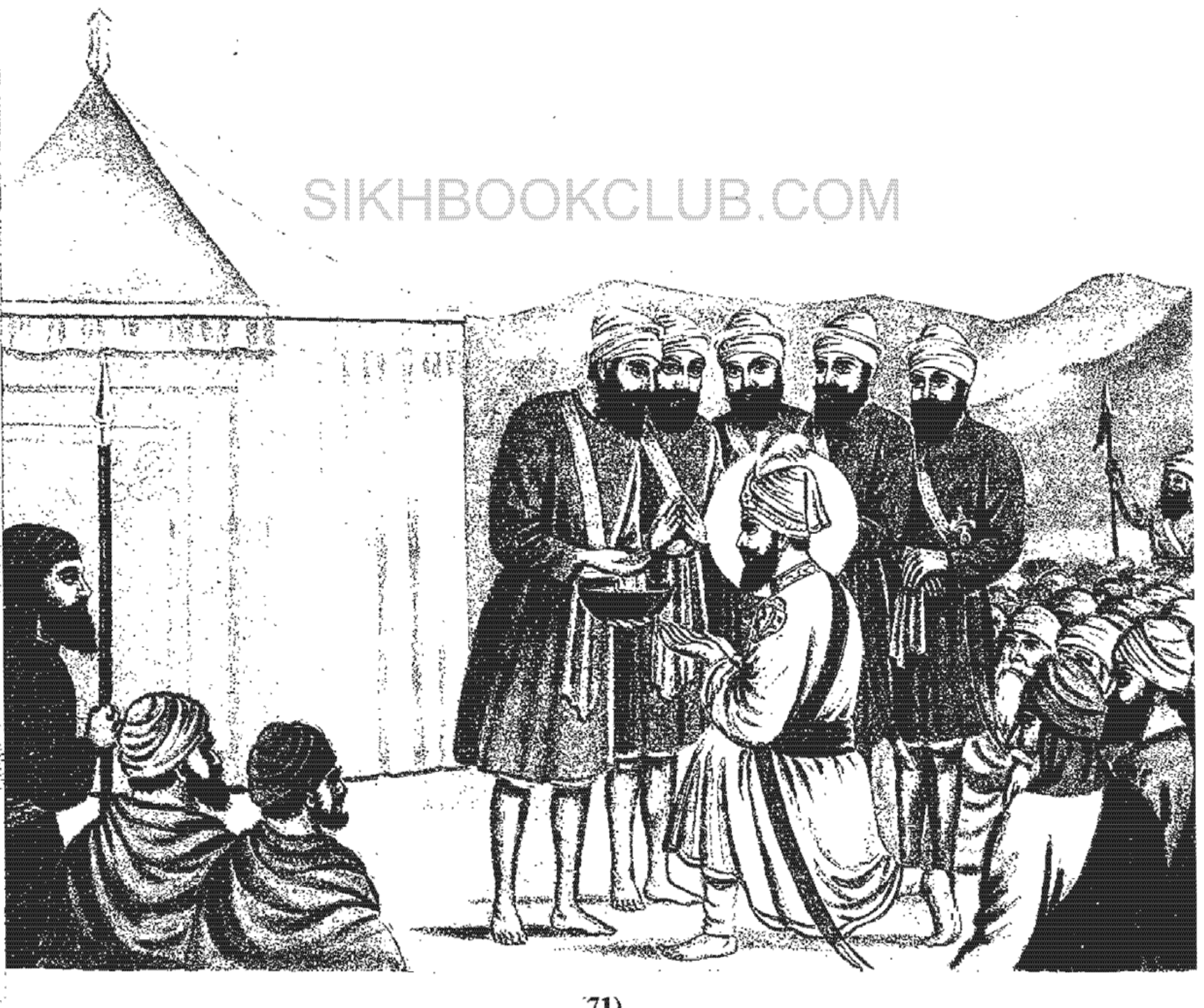
भाई दया सिंघ लाहौर (पंजाब) के रहने वाले थे। आपका जन्म सम्वत् १७२६ को सुधे खत्री तथा माता दयाली के गृह में हुआ। लाहौर शहर जो कहर व अनर्थ का प्रतीक था, श्री गुरु रामदास का जन्म स्थान होने के कारण बाद में सिक्खी के रंग में रंगा गया था। अमृतसर शहर बसने के कारण लाहौर शहर में नम्रता तथा दया भी आ गई थी। गुरु गोबिंद सिंघ जी की शादी भी वहीं पर हुई थी। इसलिए लाहौर में सिक्खी का गहरा प्रभाव था। भाई दया सिंघ अपने जन्म से ही सिक्खी की घूंटी लेकर जवान हुए थे। सिक्खी उनके अङ्ग-सङ्ग में भरी हुई थी तथा वह पहले ही अपना सब कुछ गुरु जी का ही समझते थे। सम्वत् १७५६ की वैशाखी को वह पूरे तीस वर्ष के युवा थे। जब वैशाखी वाले दिन गुरु साहिब ने शीश की मांग की तो पहले उन्होंने कुछ संकोच किया, लेकिन जब उन्हें अहसास हुआ कि मेरा तो कुछ भी नहीं है, इसके अलावा शुभ अवसर कौन सा हो सकता है कि यह शरीर गुरु जी को भेंट करके भव-सागर को पार किया जाए। इसलिए वह प्रथम सिक्ख थे जो तुरन्त शीश भेंट करने के लिए तैयार हो गए थे।

पहले उनका नाम दया राम था, लेकिन अमृत छक कर वह भाई दया सिंघ बन गए। वह सदा गुरु गोबिंद सिंघ जी के साथ रहे तथा सभी युद्धों में उन्होंने

गुरु साहिब को सहयोग दिया। चमकौर के युद्ध में सिंघों ने उनकी जिम्मेवारी गुरु साहिब के साथ रहने की लगाई थी। जब दीनां कांगड़ में फतह-पत्र ज़फ़रनामा लिखा तो भाई दया सिंघ उस पत्र को लेकर औरंगज़ेब को मिले। गुरु साहिब के साथ ही वह दमदमा साहिब तथा नांदेड़ गए और नांदेड़ में ही वह सम्वत् १७६५ में स्वर्ग सिधार गए।

भाई धर्म सिंघ

भाई धर्म सिंघ जी हस्तिनापुर दिल्ली के रहने वाले थे। उनका जन्म सम्वत् १७२३ में श्री सन्त राम जट्ट के घर हुआ। उनकी माता का नाम साभो था। उनके माता पिता गुरु तेग़ बहादुर जी के सिक्ख श्रद्धालु थे। भाई धर्म सिंघ ने भी सिक्खी



की रौशनी उन से ही प्राप्त की। उनका पहला नाम धर्म चंद अथवा धर्म दास था जैसे कि अलग-अलग इतिहासकारों ने यह दोनों नाम दिए हैं तथा अमृत छकने के पश्चात् वह धर्म सिंघ हो गए। भाई दया सिंघ की भांति यह भी गुरु साहिब के साथ अपने अन्तिम समय तक रहे। उन्होंने सभी धर्म युद्धों में शूरवीरता के जौहर दिखाए। चमकौर की जंग में यह भी गुरु साहिब के साथ थे, लेकिन जब संगत ने इन्हें गुरु जी के साथ रहने का उत्तरदायित्व सौंपा तो इन्होंने भी चमकौर की गढ़ी में से निकल गुरु साहिब को सहयोग दिया। दीनां कांगड़, मुक्तसर तथा दमदमा साहिब में ठहरते समय भी वह गुरु जी के साथ रहे। जब गुरु जी नांदेड़ गए तो भाई साहिब भी उनके साथ थे। नांदेड़ में ही उनका सम्वत् १७६५ में देहान्त हो गया।

भाई मोहकम सिंघ

भाई मोहकम सिंघ जी द्वारका (गुजरात) के रहने वाले थे। उनका जन्म सम्वत् १७२० में श्री तीर्थ चंद छींबे तथा माता दीवां बाई के गर्भ से हुआ। द्वारका, पंजाब अथवा आनन्दपुर से हज़ारों मील दूर है, लेकिन बलिहार जाएं गुरु साहिब की सिक्खी के, कि भारत के प्रत्येक भाग में उनकी सिक्खी का अनूठा प्रभाव तथा प्रेम था। भाई मोहकम सिंघ हज़ारों मीलों का पथ तय कर वैशाखी वाले दिन उपस्थित हुए थे। वह उस जाति से सम्बन्धित थे, जिसे निम्न तथा अछूत समझा जाता था, लेकिन उनके द्वारा शीश भेंट करने के साहस ने यह साबित कर दिया कि हिम्मत तथा हौसले में वह किसी भी उच्च-जाति से कम नहीं थे। उनका पहला नाम मोहकम चंद था तथा अमृत छकने के पश्चात् वह मोहकम सिंघ बन गए। गुरु साहिब के वह विशेष शूरबीरों में से थे तथा समस्त धर्म युद्धों में उन्होंने अपनी बहादुरी की छाप छोड़ी थी।

चमकौर साहिब के युद्ध में उन्होंने अपने सहयोगियों से विमर्श कर गुरु साहिब, भाई दया सिंघ, भाई धर्म सिंघ तथा भाई मान सिंघ को हवेली में से निकल जाने के लिए प्रार्थना की। लेकिन आप बड़ी शूरवीरता से दुश्मनों से लड़ते रहे। इसी युद्ध में सैंकड़ों ज़ालिमों को नरक में भेजते हुए २२ दिसम्बर, सन् १७०४ को शहीद हो गए।

भाई साहिब सिंघ

भाई साहिब सिंघ जी बिदर कर्नाटक के रहने वाले थे। आपका जन्म सम्वत् १७१९ को भाई चमने नाई के गृह माता सोना बाई के गर्भ से हुआ। बिदर शहर कर्नाटक में भारत के दक्षिण की ओर है। जिस से भली-भांति यह मालूम होता है कि गुरु साहिब का दक्षिण में भी काफी प्रभाव था। हिन्दुस्तान के सभी लोग मुगल साम्राज्य के ज़ुल्म से तंग हो चुके थे तथा अध्यात्मिक पक्ष से भी वह क्षीण हो गए थे। इसलिए समस्त भारत वासी गुरु साहिब को अपना मसीहा समझते थे। यह कहना असत्य नहीं होगा कि यदि गुरु साहिब दो दशक और संसार में रहते तो सारा हिन्दुस्तान ही सिक्ख बन जाता।

भाई साहिब सिंघ बड़े शूरवीर तथा फुर्तीले थे। वह गुरु साहिब के सभी युद्धों में सहयोगी रहे। चमकौर साहिब के युद्ध में इन्होंने भी अपनी जान की बाजी लगा दी। अपने अन्य साथियों भाई मोहकम सिंघ तथा भाई हिम्मत सिंघ से विचार कर उन्होंने गुरु साहिब को किला छोड़ने के लिए मजबूर किया। चमकौर साहिब की जंग में ही बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए २२ दिसम्बर, १७०४ को आपने शहादत का जाम पी लिया।

भाई हिम्मत सिंघ

भाई हिम्मत सिंघ जगन्नाथ पुरी उड़ीसा के निवासी थे। उनका जन्म भाई गुलाब राए झीवर के गृह सम्वत् १७१८ में हुआ। आप जी की भाग्यशाली माता का नाम धनो था। जगन्नाथ पुरी पंजाब से कोसों दूर है लेकिन भाई साहिब में गुरु जी प्रति इतनी श्रद्धा तथा स्नेह था कि आप हजारों कोस का मार्ग पैदल चलकर हज़ूर के दरबार में उपस्थित हुए। जगन्नाथ पुरी भी एक पवित्र तथा विख्यात तीर्थ स्थान है, जहां पर हिन्दुस्तान के प्रत्येक भाग में से लाखों श्रद्धालु दर्शन हेतु आते हैं। लेकिन भाई साहिब का पत्थर पूजा में विश्वास नहीं था। वह केवल एक अकाल पुरुष तथा गुरु गोबिन्द सिंघ को मानते थे। आपका पहला नाम हिम्मत राए था लेकिन अमृत छकने के पश्चात् हिम्मत सिंघ हो गए। अपने नाम की भांति आप अथाह हिम्मत वाले तथा बहादुर थे। उन्होंने किसी भी युद्ध में पीठ न दिखाई थी। वह अन्तिम श्वास तक गुरु साहिब के इर्द-गिर्द ही रहे। चमकौर साहिब के युद्ध में आप भी उस विचार-विमर्श में शामिल थे, जिससे गुरु जी को चमकौर की गढ़ी छोड़नी पड़ी। चमकौर के युद्ध में आप बड़ी हिम्मत तथा बहादुरी के साथ लड़े और सैंकड़ों वैरी मौत के घाट उतार कर २२ दिसम्बर, १७०४ को स्वयं भी प्रभु-चरणों में पहुंच गए।

बहादुर दीप कौर

गुरु जी ने अमृत छकाने में औरत व मर्द में कोई भेद न रखा। जो पुरुष अमृत छकते थे उनके नाम के साथ सिंघ लग जाता था तथा औरतों के नाम के पीछे कौर लग जाता था। अमृत छक कर अबला तथा कमज़ोर औरतें भी शेरनी के समान हो जाती थीं। सिक्ख इतिहास में ऐसी बहादुर औरतों की हज़ारों उदाहरण मिलती हैं।

जब आनन्दपुर साहिब में अमृत का प्रवाह चल रहा था तो उस समय माझे की संगत का एक जत्था आनन्दपुर की ओर जा रहा था। उस जत्थे में एक दीप कौर नामक नारी भी थी। यह जत्था गांव तलब्बण के निकट एक कुएँ पर बैठकर जल-पान करने लगा। लेकिन दीप कौर को प्यास न होने के कारण वह वहां न रुकी तथा नाम-सिमरन करती हुई धीरे-धीरे आगे चलती गई। उसने सोचा कि मेरे साथी तेज चलने वाले हैं, शीघ्र ही मेरे साथ आ मिलेंगे। लेकिन अभी वह थोड़ी दूरी पर ही गई थी कि चार मुसलमान लुटेरों ने उसे अकेली समझ आ पकड़ा। वह भयभीत न हुई, उसने तुरन्त ही अपने हाथ से एक कंगन उतार कर कुछ दूर फैंक दिया। उन में से एक लुटेरा उस कंगन के पकड़ने लगा तो दीप कौर ने पलक झपकते ही अपनी तलवार निकाल कर उसकी गर्दन पर दे मारी। दूसरे लुटेरे एक दम भयभीत हो गए। वह अभी अपने छुरे निकालने ही वाले थे कि उसने अन्य दो लुटेरों पर भी वार कर उन्हें समाप्त कर दिया। चौथा जब भागने लगा तो उस पर भी दीप कौर ने ज़ोर से वार किया, लेकिन वह बच गया तथा दोनों में हाथापाई हो गई। लुटेरे ने दीप कौर के तलवार वाले हाथ को थाम लिया। लेकिन बीबी दीप कौर में अमृत की ईश्वरीय शक्ति चण्डी का रूप धारण कर गई। उसने पलक झपकते ही उस लुटेरे को नीचे गिरा लिया और उसकी दाती पर बैठ कर उसके सीन में तलवार घोंप दी। तत्पश्चात् उसके जत्थे वाले साथी भी आ गए। बीबी की बहादुरी देख वह चकित हो उठे। कई तो धन्य सिक्खी, धन्य सिक्खी कहने लगे, लेकिन कई मुँह चिड़ाने लगे कि एक औरत का क्या काम है कि वह मर्दों से लड़े। यह पर-पुरुष के साथ लगने से अपवित्र हो गई है। अब यह पवित्र नहीं रही।

सारी संगत आनन्दपुर साहिब पहुंच गई, वहां उन्होंने बीबी दीप कौर की वार्ता गुरु साहिब को बताई। कई गुरु साहिब के आगे विरोध प्रकट करने लगे कि यह तुर्क की छाती पर बैठने से कलुषित हो गई है। इसलिए अब यह सिक्खी के घर में रहने योग्य नहीं रही।

गुरु जी पहले तो कुछ रोष में आए, फिर हंस कर कहने लगे, "यह बहादुर सिंघनी कलुषित नहीं हुई, वास्तव में तुम्हारे अभी मन्दे ख्याल ही समाप्त नहीं हुए। अमृत छक कर भी तुम वही भीरु व कायर विचार रखते हो, जिनसे हिन्दुस्तान अब तक गुलाम बना हुआ है। बीबी दीप कौर ने जो कुछ किया है, प्रत्येक सिक्ख की पुत्री को इसी प्रकार करना चाहिए। इसने अपनी इज़्ज़त-आबरु व जान की रक्षा कर अपने आप को इतना ऊंचा उठा लिया है कि इस पर किसी प्रकार की निन्दा पहुंच नहीं सकती। यह बीबी धन्य है, यह हमारी अन्य पुत्रियों के लिए प्रकाश स्तम्भ बनेगी।"



भाई बचित्र सिंघ

एक दिन गुरु जी जब शिकार खेलने गए तो पहाड़ी राजाओं ने उन पर अचानक आक्रमण कर दिया। गुरु जी के साथ निस्संदेह बहुत कम शूरवीर थे, परन्तु वह ऐसी बहादुरी के साथ लड़े कि पहाड़ियों को न केवल पराजय का ही मुँह देखना पड़ा, बल्कि एक पहाड़ी राजा भी मारा गया।

इस पराजय से पहाड़ी राजा इतने भयभीत हुए कि उन्होंने औरंगज़ेब से सहायता लेने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए वह सरहिन्द के नवाब को मिले। नवाब ने तुरन्त ही राजा से स्वीकृति ले ली तथा दीनां बेग तथा पैंदे खां की कमाण्ड में दस हज़ार की सेना आनन्दपुर पर विजय पाने के लिए भेज दी। पहाड़ी राजाओं ने भी इतनी ही फौज शाही सेना में शामिल कर दी। जब शाही सेना आनन्दपुर के निकट पहुंची तो साहिबज़ादा अजीत सिंघ की अध्यक्षता में सिक्ख सेना ने उनका डट कर मुकाबला किया। इस युद्ध में पैंदे खां गुरु जी के हाथों मारा गया तथा पहाड़ी सेना मैदान छोड़ कर भाग गई। दीनां बेग भी बहुत ज़ख्मी हो गया। गुरु जी की इस विजय की धूम सारे देश में फैल गई, लेकिन पहाड़ी राजा अर्धमृत सांप की भांति विष घोलने लगे। कुछ समय पश्चात् उन्होंने रंघड़ों व गुज्जरों को साथ लेकर फिर आनन्दपुर पर हमला कर दिया। लेकिन मैदानी जंग में उन्हें बहुत मार पड़ी और वह मैदान छोड़कर भाग गए। अन्ततः पहाड़ी राजाओं ने आनन्दपुर शहर के इर्द-गिर्द घेरा डाल दिया। उन्होंने महीने तक घेरा डाले रखा लेकिन कुछ भी सफलता हासिल न हुई। आखिर उन्होंने सोचा कि किसी तरह किले का द्वार तोड़ा जाए।

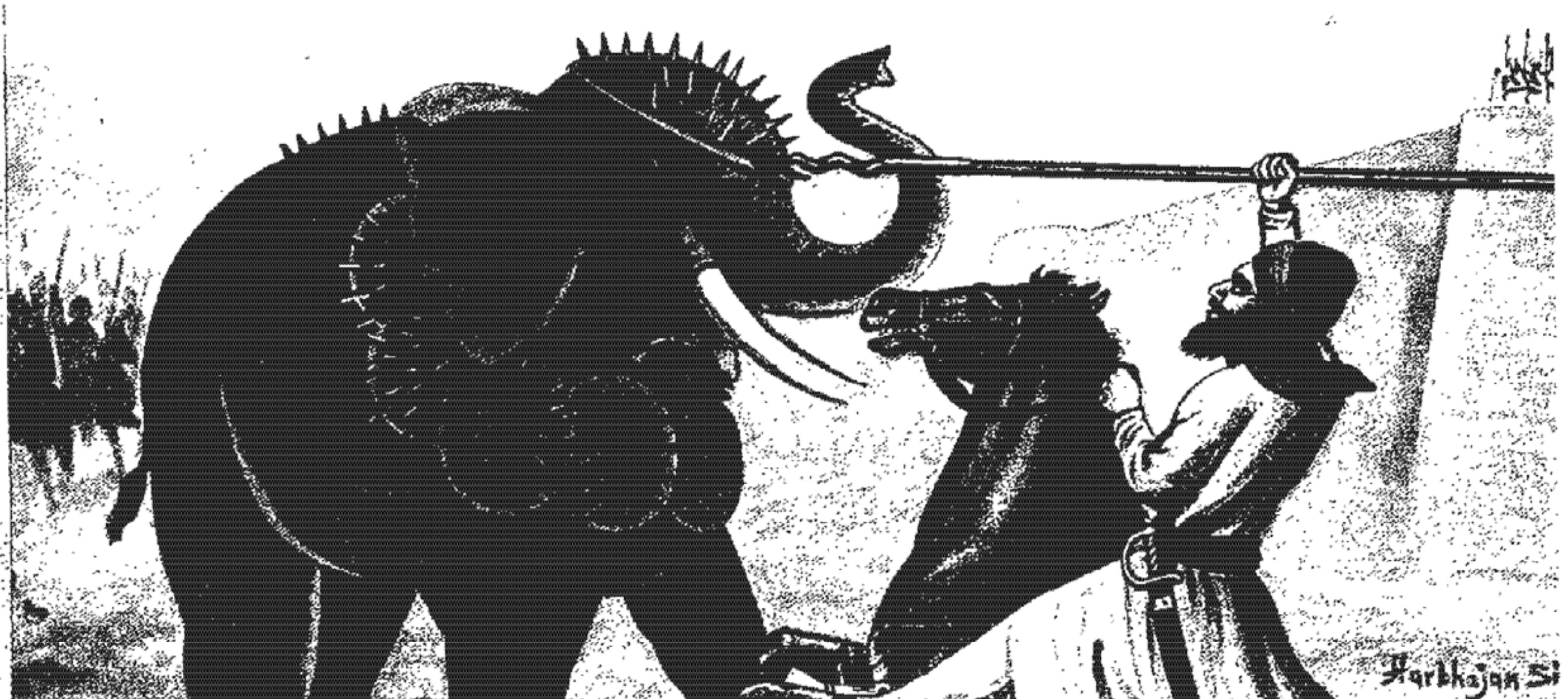
उन्होंने एक हाथी को काफी भांग तथा शराब पिलाकर उसके सारे शरीर पर लोह कवच बांध दिए। उसके माथे पर लोहे की ढाल तथा अन्य शस्त्र बांध दिए। हाथी को अपनी पहाड़ी सेना के आगे लगाकर किले के द्वार की ओर अग्रसर हुए।

गुरु साहिब को जब पता चला कि मस्त हाथी किले का द्वार तोड़ने के लिए आ रहा है तो उन्होंने अपने एक प्रशिक्षित शूरवीर भाई बचित्र सिंघ को उत्तरदायित्व सौंपा कि वह मस्त हाथी का सामना करे।

भाई बचित्र सिंघ अथाह बलवान्, योद्धा, निर्भीक था। गुरु जी ने उसे एक शक्तिशाली घोड़ा दिया तथा एक नागनी भाला दिया।

भाई बचित्र सिंघ अकाल पुरुष तथा गुरु जी का नाम लेता हुआ किले में से बाहर आ गया। मस्त हाथी द्वार की ओर झूमता हुआ आ रहा था। भाई साहिब ने घोड़े को एड़ लगा कर हाथी की ओर बढ़ाया और निकट जाकर रकाब पर भार डाल पूरी ताकत से भाला हाथी के माथे में मारा। नागनी फौलादी भाला हाथी की ढालों को चीरता हुआ, उसके माथे में धंस गया। जब हाथी को पीड़ा हुई तथा अपने सामने शेर समान गरजते हुए एक सिंघ को देखा तो वह चिंघाड़ता हुआ पीछे की ओर भाग गया। हाथी अपनी ही सेना को रौंदता हुआ, जिधर मुंह हुआ उधर ही भाग उठा। उसके पीछे गरजता हुआ भाई बचित्र सिंघ घोड़े पर सवार ऐसे चिल्ला रहा था जैसे वह अपने खेत में से किसी सुअर को भगा रहा हो। उधर सिक्ख सेना भी तैयार थी, जब उन्होंने हाथी को पीछे भागता हुआ देखा तो वह भी ललकारते हुए पहाड़ियों पर टूट पड़े। पहाड़ियों को अब समझ नहीं आ रही थी कि वह कहां छिपें तथा चारों ओर अपनी जान बचाते हुए भागने लगे। कई राजा मारे गए, तथा अनेकों पहाड़िए घायल हो गए।

गुरु साहिब भाई बचित्र सिंघ की इस बहादुरी पर अति प्रसन्न हुए तथा उन्होंने उसे शाबाश दी तथा अपनी ओर से एक तलवार भेंट की। भाई बचित्र सिंघ का नागनी भाला तख्त श्री केशगढ़ आनन्दपुर साहिब में आज भी मौजूद है।



गुरु तथा सिक्ख

गुरु जी के साथ सिक्ख इतना प्रेम करते थे कि वह उनके एक इशारे पर अपनी जान न्यौछावर करने के लिए तैयार हो जाते थे। वह गुरु जी के लिए शहीद होने में अपने गौरव की बात समझते थे। उन शूरवीरों की माताएं व पत्निएं उनकी शहादत पर और भी सम्मान अनुभव करती थीं। एक साखी है कि एक बार एक वृद्ध औरत गुरु जी के पास आई तथा प्रार्थना करने लगी, वह बार-बार कह रही थी कि महाराज! मुझ पर कृपा करो। जब गुरु जी ने उसे पूछा कि तुझे क्या कष्ट है तो वह कहने लगी, महाराज! मेरा पति आप जी की सन्त सेना में लड़ता हुआ शहीद हो गया था। उसकी शहीदी पर मैं बहुत प्रसन्न हुई। फिर मेरे दो बड़े बेटे भी पिता की भांति शहीद हुए, फिर भी मैं अति प्रसन्न हुई कि उनका जन्म सफल हुआ, लेकिन अब मेरा तीसरा पुत्र बीमार पड़ा है मुझे उसकी मृत्यु का भय नहीं, लेकिन अफसोस इस बात का है कि वह आपकी सेवा न कर सका। आप उस पर कृपा करें तांकि वह स्वस्थ होकर आपकी सेवा कर सके। गुरु साहिब उसकी प्रार्थना सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उसको ढांढस बंधाया कि तुम्हारा पुत्र अवश्य ठीक हो जाएगा।

इससे सपष्ट होता कि गुरु के सिक्खों का गुरु साहिब से कितना प्यार था।

एक बार गुरु जी रिवालसर गए। वहां एक सिक्ख ने अपने हाथों से बनाए हुए कुछ शस्त्र गुरु जी को भेंट किए। उन शस्त्रों में से एक नवीन प्रकार की दोनाली बंदूक थी। वहां उस समय कुछ पहाड़ी राजा भी गुरु साहिब के पास मौजूद थे। गुरु साहिब ने वह बंदूक भरी और अपने सिक्खों को आवाज़ दी कि कोई एक आदमी सामने खड़ा हो जाए, मैं बन्दूक का निशाना देखना चाहता हूँ। प्रत्येक में आगे खड़ा होने के लिए द्वन्द चल पड़ा। उनके झगड़े को समाप्त करने के लिए गुरु जी ने आदेश दिया कि सभी एक पंक्ति में खड़े हो जाएं, मैं यह देखना चाहता हूँ कि गोली कितने आदमियों को बेंध कर निकल सकती है। गुरु जी की आज्ञा मानकर सभी एक पंक्ति में खड़े हो गए। गुरु जी ने गोली चलाई तो वह सभी के सिरों के ऊपर से होती हुई आगे निकल गई।

पहाड़ी राजा सिक्खों की इस बहादुरी, कुर्बानी और गुरु जी के साथ अटूट प्रेम देखकर बहुत प्रसन्न हुए। वह समझ गए कि ऐसे गुरु को कौन जीत सकता है।

भाई घनइया जी

पहाड़ी राजा इर्ष्या के कारण कोई न कोई युद्ध छेड़ कर ही रखते थे। एक बार जब गुरु जी कुरुक्षेत्र गए थे तो उनकी वापिसी पर पहाड़ी राजाओं ने दो मुसलमान जरनैल सैद खां तथा आलिफ खां को गुरु जी का पीछा करने के लिए दो हज़ार रुपये देकर नियत किया। लेकिन जब सैद बेग ने गुरु जी के नूर को देखा तो उसने एक सन्त सिपाही से लड़ना उचित न समझा तथा उनकी शरण में आकर हमेशा के लिए उनका ही हो गया। आलिफ खां अपनी पराजय होती देख कर भाग गया।

इस पराजय से पहाड़ी राजा बहुत दुखी हुए तथा उन्होंने बादशाह औरंगज़ेब से प्रार्थना की कि वह सेना भेजें। औरंगज़ेब ने अपने एक विश्वसनीय जरनैल सैद खां को गुरु जी पर आक्रमण करने के लिए भेजा। लेकिन वह भी सय्यद बुद्धु शाह का साला होने के कारण गुरु जी का श्रद्धालु था। इसलिए युद्ध करने की बजाय वह भी उनकी शरण में आ गया।

सैद खां के पश्चात् शाही सेना की बागडोर रमजान खां ने सम्भाली। उसने बड़े आवेश से आक्रमण किया। गुरु जी शाही सेना की चाल को समझते थे, इसलिए उन्होंने आनन्दपुर खाली कर दिया। मुसलमानों ने शहर पर कब्जा कर लिया तथा



निर्दयता से लूटा। जब फौजी खा-पीकर सो गए तो सिक्खों ने साहिबज़ादा अजीत सिंघ की अध्यक्षता में आक्रमण कर दिया। सारी शाही सेना को तहस-नहस कर दिया तथा लूटा हुआ माल वापिस ले लिया। शहर को वापिस जीत कर गुरु जी आनन्दपुर चले गए।

औरंगज़ेब ने इस हार से चिड़कर एक विशाल सेना को आनन्दपुर विजय करने के लिए भेजा। इस प्रकार एक संग्राम प्रारम्भ हो गया। दोनों और सैंकड़ों घायल होते अथवा मरते थे।

लेकिन इन युद्धों में एक ऐसा इन्सान भी था जो लड़ता नहीं था, बल्कि घायलों की सेवा-सम्भाल करता था। यह श्रद्धालु सिक्ख भाई घनइया जी था। वह गांव सोदरा जिला गुज़रांवाला का निवासी था। बड़े शान्त स्वभाव तथा भजनीय होने के कारण उनका हृदय कत्लो-ग़ारत में नहीं लगता था। वह घायलों का इलाज मरहम-पट्टी करना जानते थे। सिक्खों की लड़ाइयों में जब वह घायल तथा तड़पते शूरवीर को देखते तो उनका हृदय दीन हो जाता था। इसलिए जहां भी युद्ध होता था, वह अपने साथियों सहित पानी की मशकें भरकर घायलों को पानी पिलाने पहुंच जाते और मरहम पट्टी करते।

एक बार कुछ सिक्खों ने गुरु साहिब के पास जाकर शिकायत की कि भाई घनइया दुश्मनों की मदद करता है। वह दुश्मनों की सेना के घायलों को पानी पिलाता है तथा मरहम-पट्टी करता है। इसलिए उन में से कई ठीक होकर पुनः हमारे साथ लड़ने लग जाते हैं।

गुरु जी ने भाई घनइया को बुलाया तथा सिक्खों की शिकायत के बारे में पूछा। भाई घनइया ने विनय की, "हे सच्चे पातिशाह! मुझे सभी घायलों में आप ही का रूप नज़र आता है। इसलिए मैं किसी दुश्मन अथवा मित्र की सेवा नहीं करता, मैं तो हर समय आप की ही सेवा करता हूँ। आप जी के कथन अनुसार प्रत्येक दुखी की सेवा करना गुरु की सेवा के समान है। इसलिए मैं तो केवल आप की ही सेवा करता हूँ, आप को ही पानी पिलाता हूँ तथा आप की ही मरहम पट्टी करता हूँ।"

भाई घनइया के इस उत्तर से गुरु जी बहुत प्रभावित हुए तथा प्रसन्नता से उन्होंने उसे सम्मान दिया और कहा, "भाई घनइया तुम धन्य हो, तुमने अपना जन्म सफल कर लिया है। उस समय रैंड-क्रॉस आदि सोसाइटी नहीं होती थीं, जो घायलों व बीमारों की सेवा-सम्भाल कर सकतीं इसलिए भाई घनइया जी को रैंड-क्रॉस का संस्थापक समझा जाता है।"

आनन्दपुर का घेरा

जब शाही सेना को खुली लड़ाई में बार-बार पराजय का मुँह देखना पड़ा तो उन्होंने सोचा कि किसी तरह आनन्दपुर के किले को घेर लिया जाए तथा किले का राशन-पानी बन्द करके सिक्ख सेना को आत्म-समर्पण करने के लिए विवश किया जाए।

जब यह घेरा काफी दिनों तक चलता रहा तो किले के वासियों को काफी संकट का सामना करना पड़ा, लेकिन इसके बावजूद वह चढ़ती-कला में थे। कुछ दिनों के पश्चात् राशन-पानी तथा पशुओं की खुराक समाप्त होने से कई जानवर भूख से तड़प रहे थे। सम्भावित था कि सिक्ख संगत में व्याकुलता होती। जब पहाड़ियों तथा मुगलों के इसके बारे में संकेत मिले तो उन्होंने गाय व कुरान की सौगन्ध खाकर किले में सन्देश भेजा कि सिक्ख किला छोड़कर चले जाएं उन्हें कुछ नहीं कहा जाएगा। सिक्खों ने भी गुरु जी को इस मश्वरे प्रति सहमति प्रकट करने को कहा, लेकिन गुरु जी ने उनको समझाया कि इन पहाड़ियों तथा मुगलों पर किसी प्रकार का भी विश्वास नहीं किया जा सकता। लेकिन संगत द्वारा बल दिए जाने पर उन्होंने एक चाल चली। उन्होंने किले में जो कूड़ा



कर्कट, पुराना सामान व पुराने कपड़े आदि पड़े थे, उन्हें घोड़ों वे बैलों पर लादकर तथा उनके सिरों पर मशालें बांधकर कीमती सामान के रूप में किले में से बाहर निकाल दिया। फौजियों ने जब घोड़ों व बैलों पर सामान जाता देखा तो वे उन पर टूट पड़े, लेकिन जब उन्होंने गन्दगी की भरी गठरियों को टटोला तो वह बहुत शरमिंदा हुए। सिक्खों ने भी गुरु जी की इस चाल से शिक्षा ली तथा उन को दृढ़ विश्वास हो गया कि इन विरोधियों का यकीन नहीं किया जा सकता।

जब गुरु साहिब ने फिर भी किला खाली न किया तो राजाओं ने औरंगज़ेब की ओर से लिखा एक पत्र गुरु साहिब तक पहुंचाया। इस पत्र में गुरु साहिब की बहुत स्तुति की गई थी तथा औरंगज़ेब की ओर से कुरान व मुहम्मद की सौगन्ध उठाई हुई थी कि किला खाली कर दें तो आप को कुछ नहीं कहा जाएगा।

अन्त सिक्खों की दुर्दशा देख तथा झूठी कसमों पर विश्वास करके गुरु जी ने किला खाली कर दिया। उन्होंने भाई गुरदास उदासी को किले की सेवा-सम्भाल सौंप कर २० दिसम्बर सन् १७०४ को अपने अमूल्य ग्रन्थ तथा सामान लेकर पांचों प्यारों तथा पांच सौ सिक्खों सहित चल पड़े।

एक तो दिसम्बर का महीना, दूसरा वर्षा का मौसम तथा शीत लहर चलने के कारण कहर भरी सर्दी थी। लेकिन जब गुरु जी बाहर आ गए तो मुगल सेना को कुरान तथा मुहम्मद की सभी कसमें भूल गईं तथा उन्होंने गुरु जी का पीछा किया। गुरु जी कीरतपुर तथा निरमोहगढ़ से होते हुए सिरसा नदी के किनारे पहुंच गए। यहां पर दुश्मन सेना से घमासान युद्ध हुआ। काफी सिक्ख शहीद हुए, लेकिन गुरु जी सिरसा नदी को पार कर गए। वर्षा होने के कारण नदी पूर्ण भरी हुई थी, जिससे उनके कई अमूल्य ग्रन्थ नदी की भेंट हो गए।

इसी तुफान में माता गुजरी तथा छोटे साहिबज़ादे बिछुड़ गए। गुरु साहिब, साहिबज़ादा अजीत सिंघ तथा साहिबज़ादा जुझार सिंघ व अपने पांचो प्यारों तथा विश्वसनीय सिक्खों सहित चमकौर साहिब की ओर चले गए। चमकौर साहिब पहुंच कर आप ने एक कच्ची गढ़ी में टिकाना किया तांकि यहीं से दुश्मन का सामना किया जा सके।

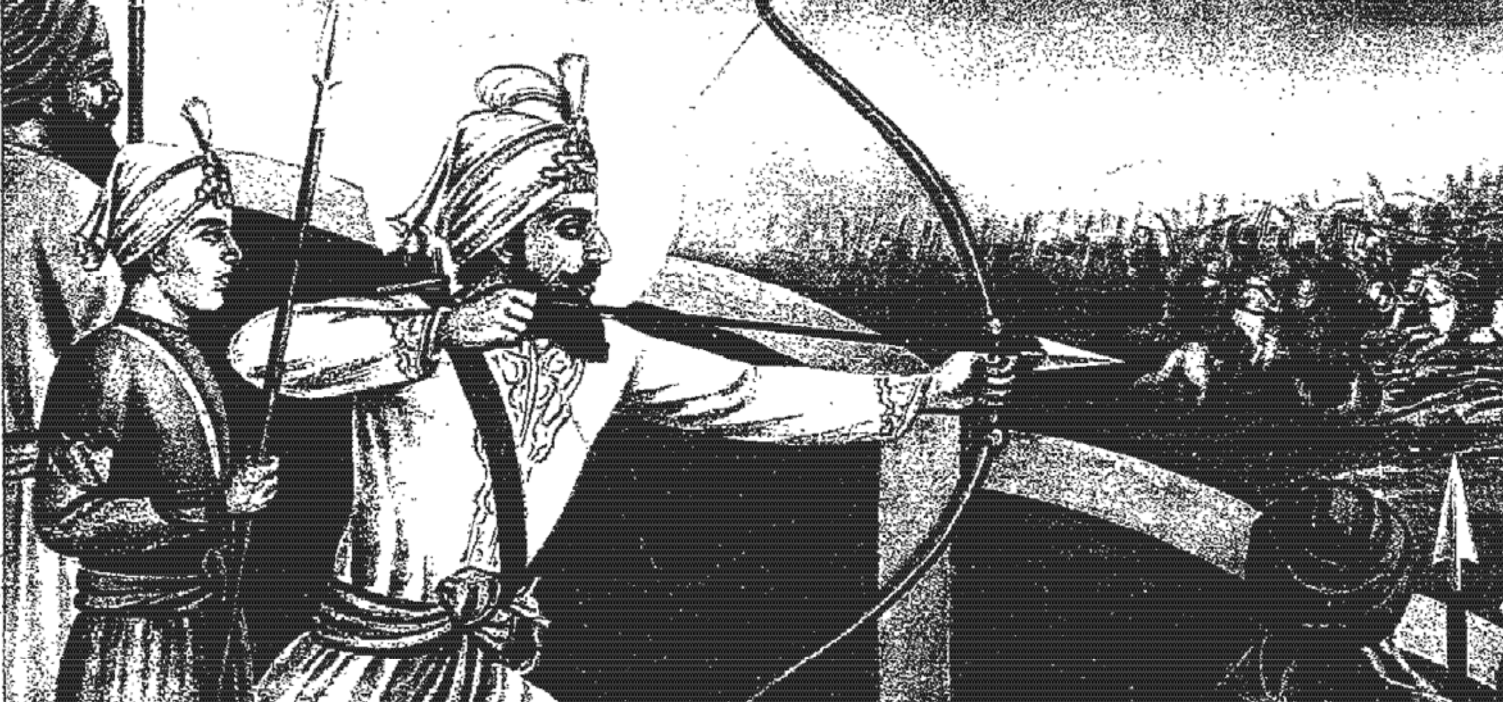
चमकौर का युद्ध

गुरु जी कच्ची गढ़ी में ही मोर्चा लगा कर बैठ गए। रात होते ही दस लाख के करीब शाही सेना ने गढ़ी को घेर लिया। गुरु जी के पास केवल चालीस-पच्चास के करीब सिक्ख थे। दुश्मनों के आगे वह अल्प संख्यक क्या कर सकते थे? लेकिन

जब वह गढ़ी के समीप पहुंचे तो सिक्खों ने गोलियों तथा तीरों की बौछार कर दी, कुछ ही मिन्टों में सैंकड़ों दुश्मन मृत्यु की गोद में लेट गए।

दुश्मन चकित हो उठे तथा उन्होंने एक बार फिर हमला किया, लेकिन इस बार भी उनका वही हाल हुआ। जब बड़े-बड़े जरनैलों ने अपनी सेना की यह दशा देखी तो वह स्वयं आगे आए। दो जरनैलों नाहर खां तथा गनी खां ने दीवार फांदने का साहस किया, लेकिन गुरु जी द्वारा तीर लगने से वह यमलोक पहुंच गए। ख्वाजा महमूद दीवार की ओट में छिप कर बच गया, नहीं तो उसकी भी वही दशा होनी थी। गुरु जी विशिष्ट तथा सुव्यक्त योद्धाओं को चुन-चुन कर मार रहे थे।

अन्त में शाही सेना ने गढ़ी का द्वार तोड़ने का निर्णय किया, लेकिन गुरु जी पांच सिक्खों का एक समूह सामना करने के लिए भेजते, जो सैंकड़ों दुश्मनों को रौंदते हुए शहीद हो जाते। जैसे बाबा अजीत सिंघ तथा बाबा जुझार सिंघ गुरु जी से आज्ञा पाकर दुश्मनों को निर्दयता से मारते हुए शहीदी प्राप्त कर गए। फिर जब पांच प्यारे ही रह गए तो उन्होंने विचार कर गुरु जी को विवश किया कि वह किला छोड़कर चले जाएं तथा खालसे की अगवानी करें। पांचों प्यारों की आज्ञानुसार गुरु जी भाई दया सिंघ, भाई धर्म सिंघ तथा भाई मान सिंघ सहित किले से बाहर आ गए। भाई संगत सिंघ जिनका चेहरा गुरु साहिब से मिलता था को अपने स्थान पर बिठा दिया तथा अपनी ओर से उसे कुछ तीर भी प्रदान किए।



गुरु जी चलते-चलते माछीवाड़े पहुंचे, जहां उन्होंने एक कुएँ से पानी पिया तथा वहीं पर आराम करने के लिए सो गए। यहीं पर ही भाई दया सिंघ, भाई धर्म सिंघ तथा भाई मान सिंघ उन्हें आ मिले।

उच्च का पीर

माछीवाड़े गुरु जी जिस गुलाबे खत्री के घर में ठहरे हुए थे, उसने गुरु जी की बहुत सेवा की, लेकिन मन में वह भयभीत था कि यदि किसी को पता चल गया तो उसकी खैर नहीं। वहीं पर दो पठान भाई गनी खां तथा नबी खां रहते थे, जो गुरु जी को घोड़े बेचा करते थे, वह गुरु जी के बहुत श्रद्धालु थे। गुरु जी के बारे में सुनकर वह गुलाबे के घर आए। एक वृद्धा ने गुरु जी को एक खद्दर का थान भेंट किया था। उन्होंने सलाह दी कि इस खद्दर को नीला रंग लिया जाए। उस नीले खद्दर का गुरु जी तथा उनके सिक्खों के लिए पहनावा तैयार किया गया। यह पहरावे पहन कर गुरु जी तथा उनके साथियों ने अपने केश पीछे की ओर कर लिए। ऐसा भेष धारण कर गुरु जी एक पालकी में बैठ गए। भाई धर्म सिंघ, भाई मान सिंघ, गनी खां तथा नबी खां ने पालकी को कन्धों पर उठा लिया तथा भाई दया सिंघ पीछे चंवर झूलाता जा रहा था। जो भी कोई पूछता, उसे यही कहते कि वह अपने उच्च के पीर को ले जा रहे हैं। चलते हुए वह गांव कनेच, ज़िला लुधियाना पहुंचे। गुरु जी कुछ समय वहां ठहरे। कनेच से चलकर गुरु जी हेयर गांव पहुंचे। यहां पर महन्त कृपाल दास रहता था। यह वो महन्त था जिसने भंगाणी के युद्ध में अपने मुद्गर से ही हयात खां को मार गिराया था। हेयर गांव से चलकर गुरु जी रायकोट, भाई राय कला के पास पहुंचे। वह मुसलिम जट्ट था लेकिन गुरु जी का अनन्य श्रद्धालु था। उसने अपने गुरु साहिब की बहुत सेवा की। गुरु जी के कहने पर उसने अपने नौकर नूरे को सरहिन्द भेजा कि वह माता गुजरी तथा छोटे साहिबज़ादों की खबर लाए। नूरा शीघ्र ही लौट आया तथा उसने बताया कि दोनों साहिबज़ादों को सरहिन्द के नवाब ने शहीद कर दिया है तथा माता गुजरी साहिबज़ादों की शहीदी का हाल सुन कर अपने पोत्रों के पास पहुंच गई हैं। वहीं पर ही एक सिक्ख टोडर मल ने माता जी का अन्तिम संस्कार कर दिया है। यह सुन कर गुरु जी अन्तर्ध्यान हो गए तथा उन्होंने प्रभु का धन्यवाद किया कि उनके पुत्र अटल रहे।

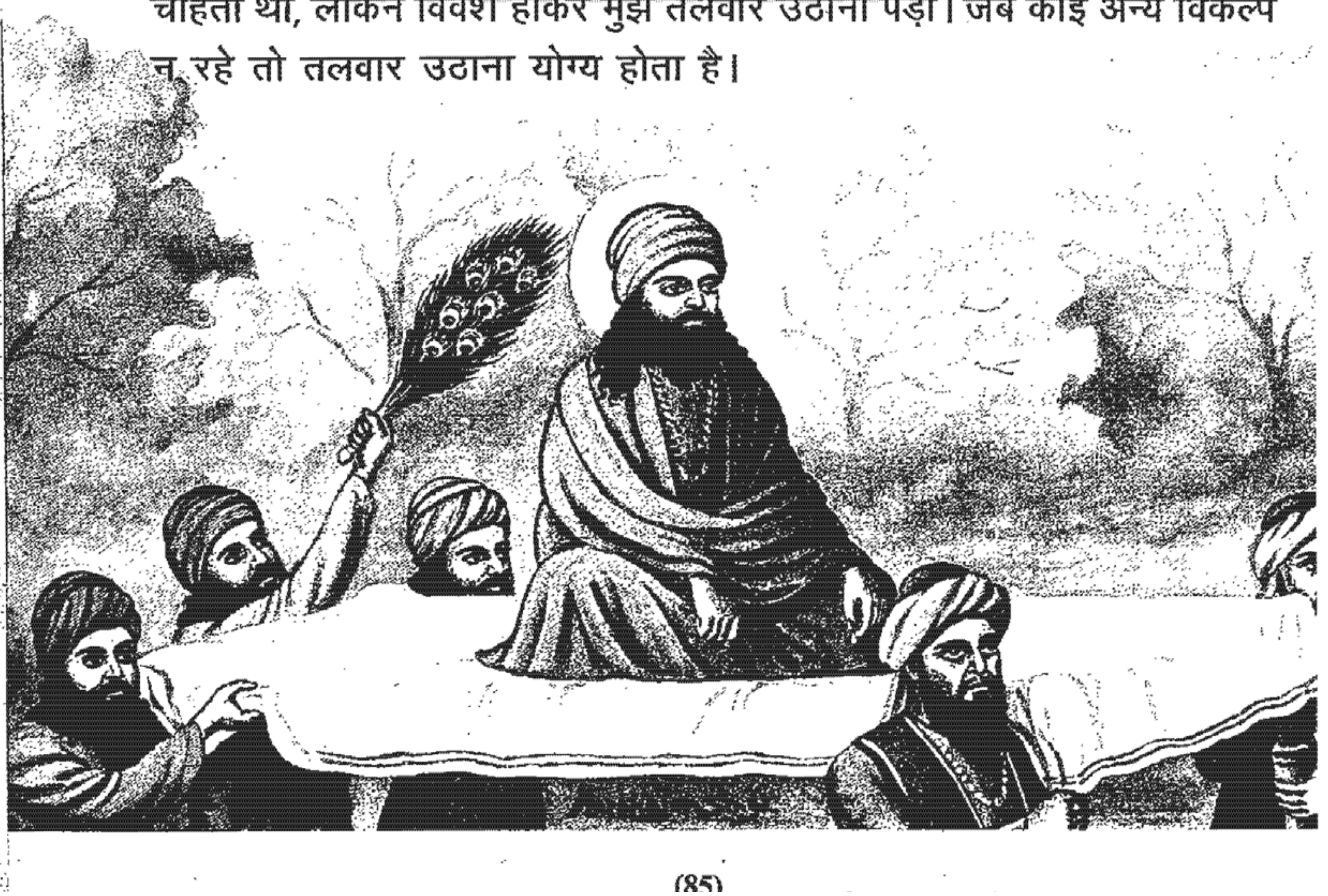
फतह पत्र

गुरु साहिब रायकोट से चलकर गांव दीने आ गए। यहां पर गुरु हरिगोबिन्द साहिब के एक श्रद्धालु के तीन पोत्रे रहते थे। इन तीनों भाइयों के नाम थे - शमीरा, लखमीरा तथा तख्त मल। जब इन्हें गुरु साहिब के आने का पता चला तो वे उन्हें अपने घर ले आए तथा बहुत सेवा की। वे बहुत बहादुर थे, किसी मुगल अथवा सरहिन्द के नवाब से नहीं डरते थे।

गुरु साहिब इनके पास काफी समय रहे तथा फिर अमृत-प्रवाह चलने लगा तथा सिक्ख उत्साहित हो गुरु जी के दर्शनों को आने लगे। थोड़े ही समय में सिक्खों की एक विशाल सेना तैयार हो गई।

यहीं दीने गांव में गुरु जी ने ज़फरनामा अर्थात् फतह-पत्र लिखा। इस पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिखा था कि औरंगज़ेब तथा उसके जरनैल झूठे हैं। वे कुरान तथा मुहम्मद की कसमें खाकर मुकर जाते हैं।

उन्होंने यह भी लिखा कि तुम्हारी दस लाख की सेना चालीस सिक्खों पर टूट पड़ी। वह इतनी सेना का सामना कैसे कर सकते थे? मैं लड़ाई नहीं करना चाहता था, लेकिन विवश होकर मुझे तलवार उठानी पड़ी। जब कोई अन्य विकल्प न रहे तो तलवार उठाना योग्य होता है।



औरंगज़ेब की निन्दा करते हुए उन्होंने लिखा कि क्या हुआ यदि मेरे चार पुत्र शहीद हो गए, लेकिन मेरा भुजंगी खालसा अभी जीवित है।

यह फतह-पत्र उन्होंने भाई दया सिंघ तथा धर्म सिंघ द्वारा दक्षिण में औरंगज़ेब को पहुंचाया।

इस पत्र को पढ़कर बेशक बादशाह प्रसन्न न हुआ, लेकिन उसके हृदय पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा, जिसके कारण तत्पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। उसने अपनी ज़िन्दगी में प्रायः यही प्रयत्न किया था कि इस्लाम के नियमों पर चले, लेकिन इस पत्र ने उसे तिरस्कृत किया कि इस्लाम के नियमों पर चलना तो एक तरफ रहा, वह तो सदा ही हज़रत मुहम्मद की शिक्षा के विपरीत चलता रहा है। उसने अपने गलत कार्यों पर पछतावा किया। उसने भाई दया सिंघ तथा भाई धर्म सिंघ को बहुत आदर सहित विदा किया और सूबा सरहिन्द व अपने मन्त्री आदि को यह हिदायत की कि गुरु साहिब को अपनी इच्छानुसार जहां भी चाहें रहने दें।

माई भागो

दीने से चलकर गुरु जी कपूरे के कोट पहुंचे। कपूरे ने एक बढ़िया घोड़ी भेंट की। गुरु जी ज्यों ज्यों आगे बढ़ रहे थे, उनके साथ सिक्खों की गणना बढ़ती जा रही थी। कोट कपूरे से ढिलवां के मार्ग से होते हुए आपने जैंतो में जाकर डेरे लगा लिए। यहां आपको पता चला कि सूबा सरहिन्द एक विशाल सेना लेकर आपके पीछे आ रहा है। स्थानीय सिक्खों ने आपको सलाह दी कि शाही सेना का सामना करने के लिए खिदराने की ढाब उचित स्थान है। गुरु जी ने अपने कुछ सिक्ख पृथक-पृथक स्थानों पर आदेश पत्र देकर भेजे कि वह खिदराने की ढाब पर एकत्र हों।

माझे में भी जब यह सन्देश पहुंचा तो शूरवीर सिक्खों में जोश भर गया। झब्बाल की रहने वाली एक माई भागो मरदाना भेष पहन तलवार, भाला उठाकर घोड़े पर चढ़ बैठी। उसके साथ ही सुर सिंघ का रहने वाला भाई महां सिंघ चालीस सिक्खों का दल लेकर तैयार हो गया। इस इलाके के सिक्खों को जब गुरु जी के परिवार की शहीदियों के बारे में पता चला तो वह आवेश में आ गए थे। इससे पहले कि वह एक विशाल सेना एकत्र करते, वह चालीस सिक्खों का दस्ता लेकर तुरन्त खिदराने की ढाब पर जा पहुंचे। यहां इन्होंने गुरु साहिब के दर्शन किए तथा गुरु साहिब से क्षमा याचना की कि वह पहले युद्धों में आपका साथ न दे

सके। गुरु साहिब बेशक माझे में नहीं गए थे लेकिन वहां के सिक्खों की बहादुरी का सम्मान करते थे, जब उन्होंने माई भागो को शूरवीरों के पहरावे में देखा तो वह प्रसन्न हो गए, "अब खालसे को कोई भी पराजित नहीं कर सकता।"

उन्हें तभी पता चला कि मुगल सेना उनके बिल्कुल करीब आ गई है।

माई भागो तथा भाई महां सिंघ ने गुरु जी से विनय की कि आप अपने सिक्खों को लेकर ऊंची चोटी पर पहुंच जाएं। दुश्मन के पहले हमले का सामना हम करेंगे। दुश्मन इतना लम्बा जंगली मार्ग तय करता हुआ काफी थका व भूखा प्यासा होगा। यहां दस-दस कोस तक कहीं पानी नहीं हैं, जब उन्हें खिदराने की ढाब में भी पानी नहीं मिलेगा तो वह प्यासे ही मर जाएंगे।

गुरु जी उनका निवेदन मानकर आगे चले गए। इन सिक्खों ने अपने कछहिरे, दुप्पटे, तथा खेस आदि दूर दूर झाड़ियों पर टांग दिए, जिससे यह ज्ञात होता था कि आगे हज़ारों की गिनती में सेना तैनात है। कोट कपूरे वाला कपूरा सेना की अगवानी करता हुआ वहा पहुंच गया। क्योंकि वह जानता था कि गुरु साहिब खिदराने की ढाब पर गए हैं। चालीस सिक्ख शेर की भान्ति गरजते हुए शाही सेना पर टूट पड़े, कुछ ही पलों में उन्होंने सैंकड़ो को मौत के घाट उतार दिया।



माई भागो सबसे आगे होकर लड़ी तथा मुगल दैत्यों को ऐसे मिटा रही थी जैसे कि देवी चण्डी माई भागो का रूप धारण कर आ गई हो।

कुछ ही समय के पश्चात् कुछ सिक्ख शहीद हो गए तथा शेष घायल हो कर गिर पड़े। जब वजीर खां और उनकी सेना ने देखा कि उनका सामना करने वाला कोई नहीं है तो वह प्यास से व्याकुल ढाब की ओर बढ़े लेकिन ढाब को पानी से क्षीण देखकर वे बहुत निराश हुए। जब कपूरे ने उन्हें बताया कि पन्द्रह कोस आगे तथा दस कोस पीछे कहीं भी पानी नहीं है तो वह सेना सहित पीछे ही लौट गया। जब युद्ध समाप्त हुआ तो गुरु जी युद्ध स्थान पर आए और शहीद सिक्खों का मुँह पोंछते, प्यार करते तथा वर प्रदान करते। इस प्रकार वह उस स्थान पर भी आए, जहां माई भागो घायल अवस्था में पड़ी हुई थी। गुरु जी ने अपनी इस शूरवीर पुत्री का मुँह साफ किया, उसके ज़ख्मों को साफ करके उन पर मरहम लगाई तथा उसके मुंह में पानी डाला।

जब गुरु साहिब ने उसके चेहरे पर पानी के छींटे मारे तो वह होश में आ गई। वह धन्य सतिगुरु! धन्य सतिगुरु!! कहती हुई उठकर बैठ गई। गुरु साहिब ने उसे महां सिंघ तथा अन्य सिक्खों की शहीदी के बारे में बताया।

तत्पश्चात् गुरु जी ने अपने आश्रय में माई भागो का इलाज करवाया तथा वह बिल्कुल स्वस्थ हो गई। सतिगुरु से अमृत छक कर वह माई भागो से माता भाग कौर बन गई, लेकिन उसने अपना मरदाना भेष न उतारा। भाई कान सिंघ नाभा अनुसार आप दस सिक्खों के साथ गुरु जी के पलंग का पहरा दिया करती थीं। पहरा देते समय वह हाथ में सवा मण का सांग रखती थी। जब गुरु जी हजूर साहिब में ज्योति-जोत समाए तो माता भाग कौर उदास होकर बिदर चली गई, वहीं पर वह प्रभु को प्यारी हो गई। उसके बर्छे का फल गुरु साहिब के सिंहासन पर आज भी सम्मान पा रहा है, जिसे कई अष्टभुजी देवी कहते हैं।

श्री दमदमा साहिब

खिदराने के शहीदों को गुरु जी ने मुक्तों का वर दिया, अर्थात् वह जन्म-मृत्यु से मुक्त हो गए हैं। उनके इस वरदान के कारण ही खिदराने की ढाब का नाम मुक्तसर पड़ा है तथा आज कल यहां ऐतिहासक शहर मुक्तसर बसा हुआ है।

मुक्तसर के स्नान को गंगा के स्नान से भी ज्यादा महत्वता दी जाती है। जो मकर संक्रान्ति को इस सरोवर में स्नान करता है वह इस भवसागर को पार कर जाता है।

खिदराने से चलकर लक्खी वन में कुछ समय विश्राम करके गुरु जी तलवंडी साबो पहुंचे। यहां पर एक गुरु का सिक्ख भाई डल्ला रहता था। वह बहुत धनवान था तथा उसके पास हज़ारों नौकर सेवा में उपस्थित रहते थे। तलवंड़ी पहुंचने पर उसने गुरु साहिब का बहुत आदर किया। गुरु जी की प्रेरणा से अमृत छक कर वह डल्ले से डल्ला सिंघ बन गया। डल्ला सिंघ का अपने इलाके में बहुत प्रभाव था, इसलिए नवाब सरहिन्द उससे डरता था। गुरु साहिब यहां लगभग नौ मास रहे तथा यहीं पर माता सुन्दर कौर व माता साहिब कौर आप जी को आ मिले।

यहां शान्तिमय वातावरण होने के कारण गुरु जी ने अधिकतर समय पढ़ाई-लिखाई में लगा दिया। यहां पर महान् विद्वान एकत्र हो गए तथा आनन्दपुर साहिब की भान्ति यह स्थान भी विद्या का केन्द्र बन गया। यहीं पर ही उन्होंने गुरु ग्रन्थ साहिब को अन्तिम रूप दिया। गुरु साहिब जी की यह बीड़ शेष सभी



बीड़ों से प्रमाणिक तथा सम्पूर्ण मानी जाती है।

दमदमा साहिब से गुरु जी दक्षिण की ओर चल पड़े उस समय गुरु जी के सिक्ख सर्व भारत में उपस्थित थे तथा गुरु जी चाहते थे कि सारे देश में घूम कर सिक्खी का प्रचार किया जाए तांकि लोग अपने भ्रम मिटा कर आत्म-विश्वास पैदा कर सकें। इसके बाद भाई दया सिंघ तथा भाई धर्म सिंघ को भी औरंगज़ेब के पास गए हुए लगभग दस माह हो चुके थे तथा उनकी ओर से कोई भी सन्देश नही पहुंचा था, इसलिए गुरु साहिब स्वयं उधर ही चल पड़े।

लेकिन इसी समय दौरान औरंगज़ेब गुरु साहिब के पत्र से प्रभावित हो मृत्यु को प्राप्त हो गया। उसके छोटे पुत्र तारा आज़िम ने सिंहासन पर कब्जा कर लिया क्योंकि बड़ा पुत्र बहादुर शाह अफगानिस्तान के युद्ध पर गया हुआ था। भाई नंद लाल के कहने पर तथा बहादुर शाह की ओर से निवेदन किये जाने पर गुरु साहिब ने इस तख्त नशीनी के युद्ध में बहादुर शाह की सहायता कर उसे हिन्दुस्तान का बादशाह बना दिया। बहादुर शाह ने गुरु जी को आगरे में मिलने के लिए प्रार्थना की तथा गुरु जी के पहुंचने पर उसने उनका अति स्वागत किया। सिक्खों पर ज़ुल्म रुक जाने के कारण, गुरु जी फिर अपने धार्मिक कार्यों में लग गए।

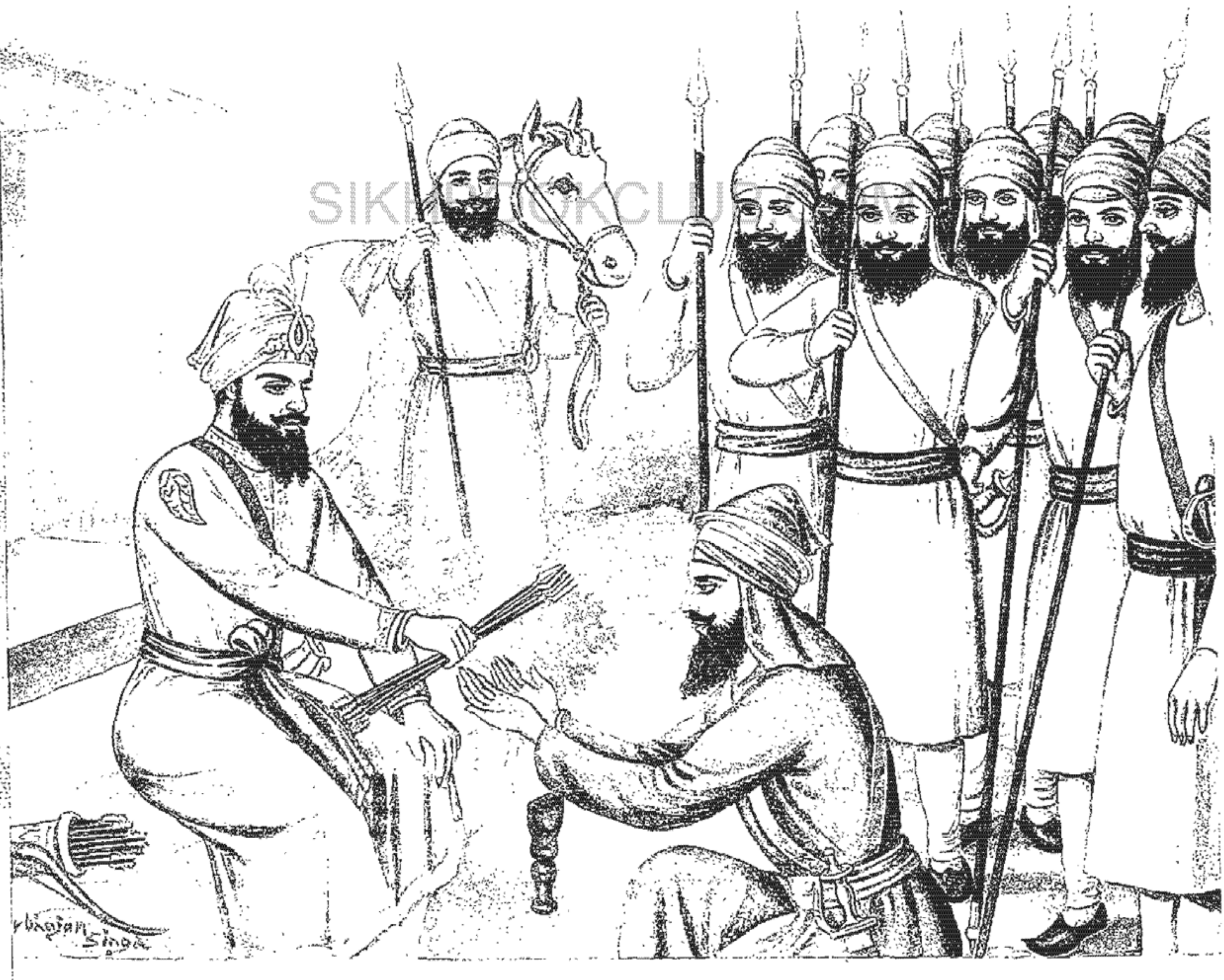
बन्दा सिंघ बहादुर

गुरु जी दक्षिण की ओर जाते हुए अपने सिक्खों को उपदेश देते तथा अमृत-छकाते नांदेड़ पहुंच गए। इस इलाके में वह जिस व्यक्ति को सही मार्ग पर चलाने आए थे, वह उन्हें मिल गया। यह था ऋद्धि-सिद्धि का मालिक वैरागी लक्ष्मण देव। वैरागी लक्ष्मण देव वास्तव में पंजाबी ही था। वह पुंछ जिले के गांव राजौरी में २७ अक्तुबर सन् १६७० को राजपूत राजदेव के घर पैदा हुआ था। इसके घर वालों ने इसका नाम लक्ष्मण दास रखा हुआ था। वह शस्त्र-विद्या में प्रवीण तथा शिकार का बहुत शौकीन था।

एक बार इसने एक हिरणी का शिकार किया तो उसका पेट काटने पर उसमें से जीवित बच्चा निकला। अनाथ बच्चे को देखकर इन्हें वैराग हो गया। घूमते हुए यह एक साधु जानकी प्रशाद के शिष्य बन गए। उन्होंने इसका नाम माधो दास रख दिया। इनकी मण्डली एक बार पंजाब आई तो यह साधु रामदास के शिष्य बन गए। यहां से यह अपने गुरु के साथ दक्षिण की ओर चले गए तथा नासिक

पहुंच कर योगी औघड़ नाथ के शिष्य बन गए। उन से इन्होंने ऋद्धि-सिद्धि तथा कई प्रकार के योगी चमत्कार भी सीखे। औघड़ नाथ के मरणोपरान्त यह स्वयं गुरु बन गए तथा नांदेड़ में ही दरिया के किनारे पर अपना एक सुन्दर स्थान स्थापित किया। इनका आश्रम इतना मनमोहक था कि जैसे पृथ्वी पर इन्द्रपुरी आ बसी हो। हज़ारों ही इनके शिष्य थे, जो हर समय इनकी आज्ञा के इंतज़ार में रहते थे।

इनकी ख्याति सुनकर कई बार महान् साधु इनके डेरे आते, लेकिन यह अपनी करामात से उन्हें शान्त कर देते, उनके चलते-चलते उन्हें कील लेते बाद में हंसी मज़ाक करते। साधु महात्मा लज्जित होकर इनके डेरे से चले जाते।



जब गुरु जी नांदेड़ पहुंचे तो वह भी अपने कुछ सिक्खों सहित इनके डेरे में गए। वैरागी माधो दास उस समय डेरे में नहीं थे, उनका सुन्दर पलंग अन्दर बिछा हुआ था। गुरु जी बिना किसी से पूछे अन्दर जाकर उनके पलंग पर बैठ गए। जब उसके शिष्यों ने विरोध किया तो सिक्खों के आठ-आठ फुट लम्बे बर्छे व भाले देखकर भाग गए। वह तुरन्त ही माधो दास वैरागी को ले आए। माधो दास वैरागी को अपने आप पर अभिमान था। उसने अपनी सभी ऋद्धियों-सिद्धियों का प्रयोग किया लेकिन वह गुरु साहिब को पलंग से उठा न सका।

जब उसने देखा कि उसके सभी चमत्कार व्यर्थ हो चुके हैं तो वह गुरु जी के चरणों में गिर कर कहने लगा, "आप कौन हैं?" गुरु जी ने उत्तर दिया कि मैं वह हूँ जिसे तुम भली-भान्ति जानते हो। माधो दास ने फिर पूछा, "मैं किसे जानता हूँ?" गुरु जी ने कहा, "अच्छी तरह विचार लो, तुम्हें सब कुछ याद आ जाएगा।" माधो दास सोच में डूब गया, उसे यह अभिमान था कि उस से बड़ा अन्य कोई शक्तिशाली नहीं हो सकता। अन्ततः उस के दिमाग ने काम किया तथा वह चौंक कर आदर से बोला, "क्या आप गुरु गोबिन्द सिंघ है?" गुरु जी ने जब हां में उत्तर दिया तो वह बोल पड़ा, "महाराज! आप यहां कैसे आये हो?" गुरु जी मुस्करा कर कहने लगे, "मैं तुझे सिक्ख बनाने तथा सत्य मार्ग दिखाने आया हूँ। माधो दास ने बड़ी नम्रता से कहा, "सच्चे पातिशाह मैं हाज़िर हूँ, मैं तो आपका बन्दा हूँ, मैं तो काफी देर से आपकी राह देख रहा था। मैं भाग्यशाली हूँ, जो आपने मेरी कुटिया में चरण डाले, अब अपने बन्दे को बन्दा बना दें।"

वह एक बार फिर गुरु-चरणों में गिर पड़ा। उसका घमण्ड चकनाचूर हो गया, उसकी आत्मा में जो अन्धेरा था, उसमें ज्ञान की रौशनी हो गई। गुरु जी ने उसे उपदेश दिया तथा अमृत-पान करवा कर सिंघ सजा दिया। वैरागी माधो दास एक महान् शूरवीर बन्दा सिंघ बहादुर बन गया।

गुरु जी ने उसे सारे पंजाब की स्थिति से अवगत कराया और कहा कि तुम्हारी इस पवित्र कुटिया का क्या लाभ, यदि पंजाब के प्रत्येक घर में विलाप हो रहा हो। बन्दे में जोश भर गया तथा वह बार-बार निवेदन करने लगा कि मुझे आज्ञा दो, मैं पंजाब में जाकर उन ज़ालिमों का खून पी लूंगा।

जब वह गुरु जी की कसौटी पर पूरा उतरा तो गुरु जी ने पांच सिक्ख बाबा

विनोद सिंघ, बाबा कान सिंघ, बाबा बाज सिंघ, बाबा दया सिंघ तथा बाबा रण सिंघ उसके सलाहकार नियुक्त किए। अपने तरकश में से उसे पांच तीर देकर आदेश दिया कि जो कुछ करना है इन पांचों सिक्खों की सलाह से ही करना है। सबसे अवश्यक है कि ब्रह्मचर्य धारण करना, पराई-स्त्री को मां-बहन समझना, सिक्ख मर्यादा में दृढ़ रहना, मन-वचन व कर्म से पवित्र रहना, अपने आप को पन्थ का दास समझना, स्वयं को गुरु न कहलाना तथा पांच प्यारों के आदेश को गुरु का आदेश समझना।

बन्दा सिंघ बहादुर ने यह भी सब कुछ स्वीकार किया तथा गुरु साहिब के आगे वन्दना कर, चुने हुए सिक्खों को लेकर पंजाब की ओर चल पड़ा।

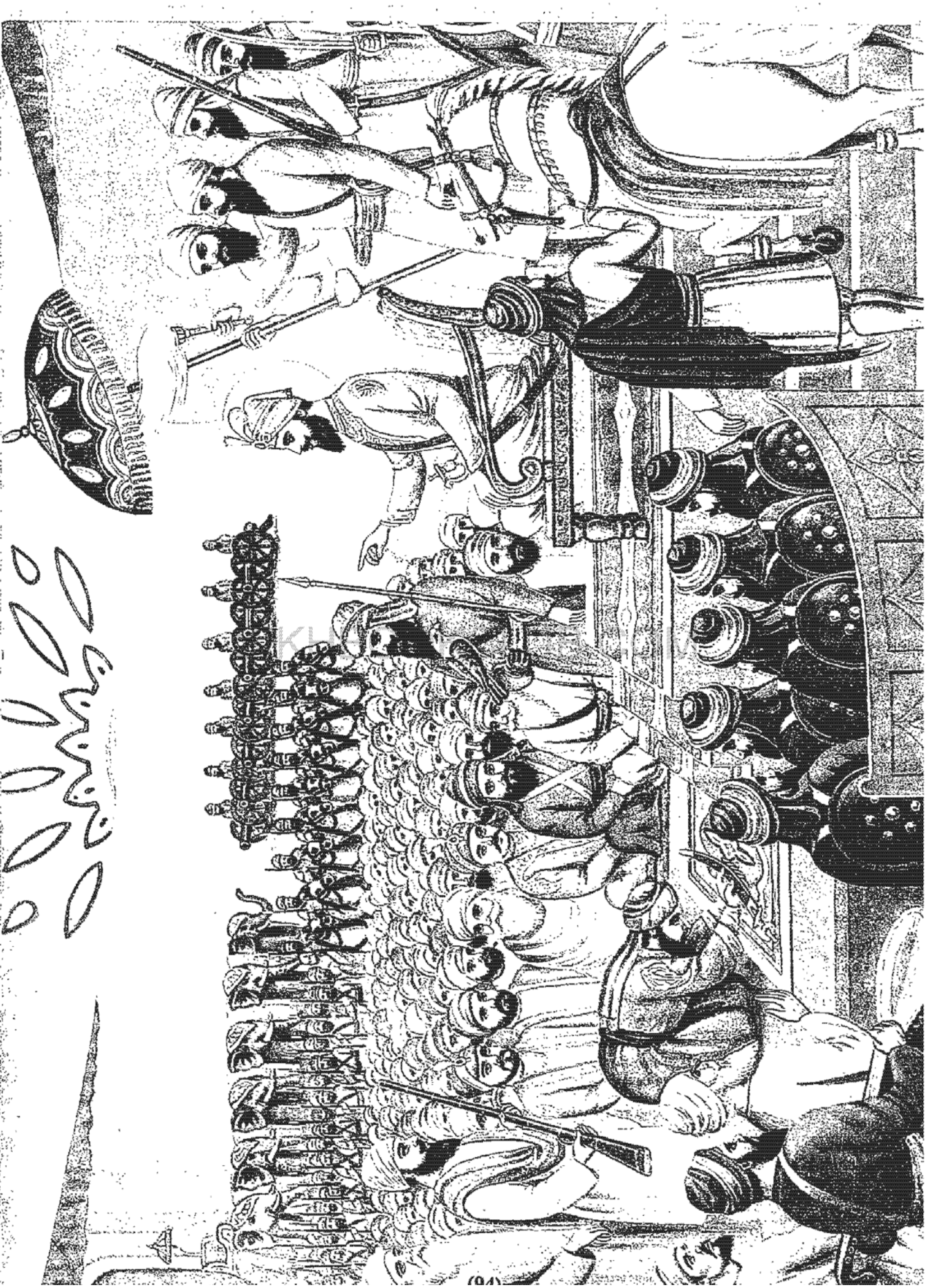
अबचल नगर-हजूर साहिब

बादशाह बहादुर शाह तथा गुरु साहिब में निकटता होने से सरहिन्द का नवाब वजीर खां भयभीत हो गया। वह डरता था कि गुरु साहिब के मासूम बच्चों को कत्ल करने के ज़ुल्म में उसे दण्ड मिलेगा। इसलिए गुरु साहिब के पंजाब आने से पहले ही वह उन्हें किसी तरह समाप्त कर देना चाहता था।

पहले उसने एक पठान भेजा कि वह गुरु साहिब को धोखे से रास्ते में ही खत्म कर दे, लेकिन वह सफलता प्राप्त न कर सका। फिर उसने जमशैद खां तथा गुल खां नामक दो पठानों को भेजा। इन पठानों ने पहले माता सुन्दर कौर के पास जाकर गुरु जी के टिकाने का पता लगाया तथा फिर वह नांदेड़ की ओर चल पड़े।

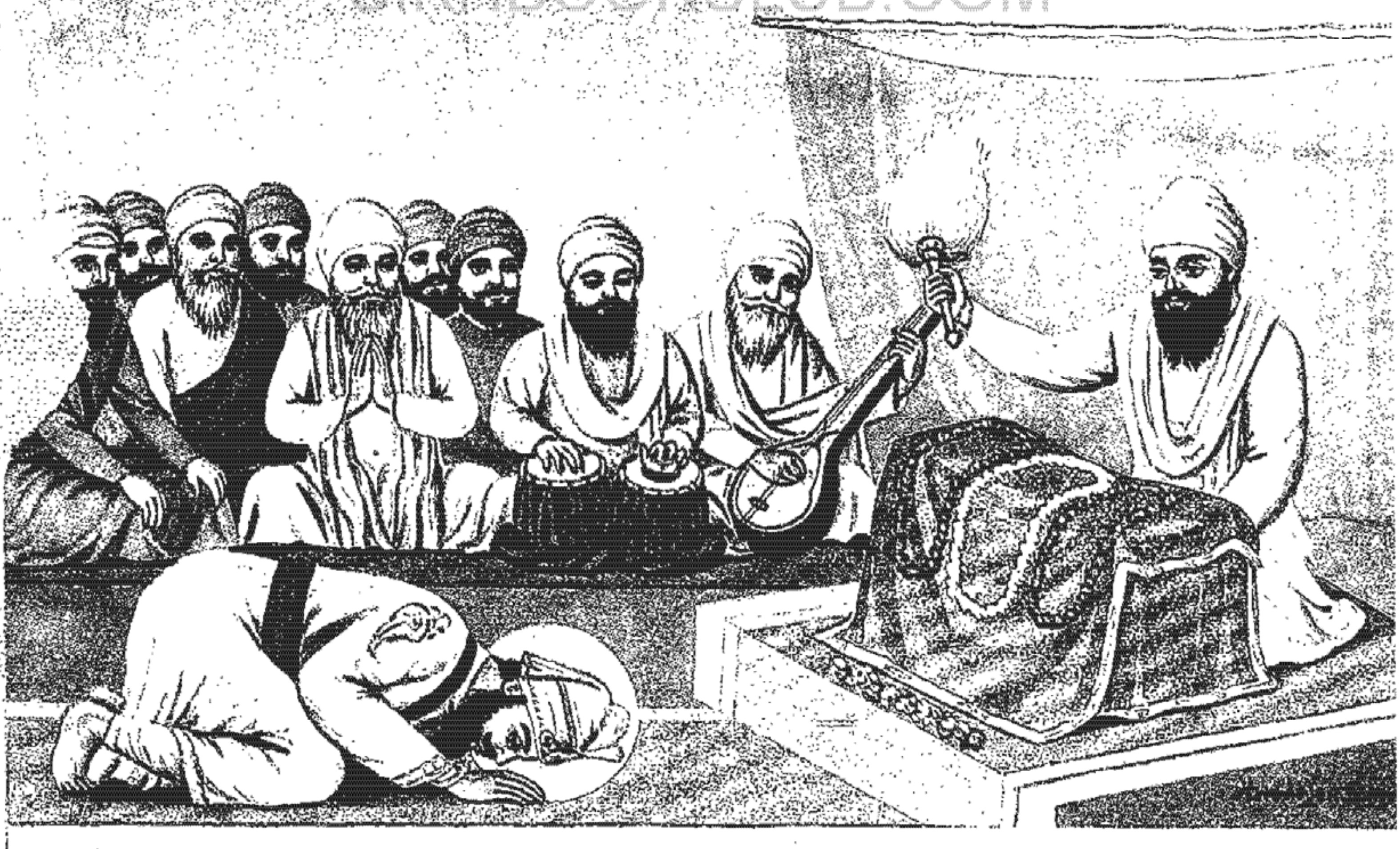
वापिस जिस समय वह नांदेड़ पहुंचे तो उस समय गुरु साहिब पंजाब आने की तैयारी कर रहे थे। इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि जितनी जल्दी हो सके गुरु साहिब को खत्म कर दिया जाए।

गुरु साहिब का विश्वास जीतने के लिए वह प्रतिदिन गुरु साहिब के दरबार में आने लगे तथा आम सिक्खों से घुल-मिल गए। एक दिन मौका पाकर वह गुरु साहिब के तम्बू में बैठ गए। गुरु साहिब के पास एक सेवक मौजूद था। जब वह कुछ काम के लिए बाहर गया तो जमशैद खां ने झट से अपनी कटार द्वारा गुरु साहिब के पेट पर वार किया। अभी वह दूसरा वार करने ही वाला था कि गुरु



साहिब ने अपने निकट पड़ी तलवार को उठाया और उसे खत्म कर दिया। दूसरा पठान गुल मुहम्मद जब भागने लगा तो सिक्खों ने उसे पकड़ लिया तथा उससे सारा भेद जानकर उसे भी यमलोक भेज दिया।

फिर जब वह गुरु साहिब के पास आए तो उन्होंने प्रिय गुरु महाराज को लहू मे लथपथ देखा। उसी समय घाव साफ करके सीए गए। जब बहादुर शाह को पता चला तो उसने कुछ अंग्रेज़ डाक्टर भेजे, जिन्होंने घावों को अच्छी तरह सीया तथा दवाई लगाई।



कुछ समय के पश्चात् घाव भर गए तथा गुरु साहिब ठीक हो गए। गुरु साहिब की कुशलता का समाचार सुनकर दूर-दूर से सिक्ख श्रद्धालु आने लगे। लेकिन एक दिन जब गुरु जी धनुष की कमान खींचने लगे तो घाव फिर फट गए। गुरु साहिब ने अब अनुभव किया कि उनका अन्तिम समय निकट आ गया है। उन्होंने समस्त संगत को बुला कर सांत्वना दी और जो गुरु ग्रन्थ साहिब वह अपने साथ लेकर गए थे, उसके आगे पांच बताशे तथा एक नारीयल रख कर माथा टेक दिया। उन्होंने समस्त संगत को बताया कि आज से आपका शाब्दिक गुरु ग्रन्थ साहिब है, जो भी प्रभु को प्राप्त करना चाहेगा तथा इस भवसागर को पार करने की लालसा करेगा, वह गुरु ग्रन्थ साहिब में से लिए शब्द के अभ्यास से पार हो जाएगा।

उन्होंने कहा जो गुरु ग्रन्थ साहिब के दर्शन करेगा, उसे गुरु साहिब के भरपूर दर्शन होंगे। आज भी अरदास में हम गुरु जी के आदेश वाले यह वाक्य पढ़ते हैं, जिन में गुरु की ओर से हमें ग्रन्थ साहिब को गुरु मानने की आज्ञा हुई है -

"आगिआ भई अकाल की, तबी चलायो पंथ॥
सभि सिक्खनि को हुकम है, गुरू मानिओ ग्रंथ॥
गुरू ग्रन्थ जी मानिओ, प्रगट गुरां की देह॥
जो प्रभ को मिलबो चहै, खोज शबद मैं लेह॥"